नमो नमो निम्मलदंसणस्स

बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथाय नमः

पूज्य आनन्द-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरूभ्यो नमः

आगम-३७

दशाश्रुतस्कन्ध

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

अनुवादक एवं सम्पादक

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

'आगम' हिन्दी-अनुवाद-श्रेणी पुष्प-३७

आगमसूत्र-३७- 'दशाश्रुतस्कन्ध'

छेदसूत्र-४- हिन्दी अनुवाद

कहां क्या देखे ?

क्रम	विषय	पृष्ठ	क्रम	विषय	पृष्ठ
१	असमाधि स्थान	०५	६	उपासक प्रतिमा	१४
२	शबल दोष	०६	७	भिक्षु प्रतिमा	१९
३	आशातना	०८	८	पर्युषणा	२१
४	गणिसंपदा	०९	९	मोहनीय स्थान	२२
५	चित्तसमाधि स्थान	१२	१०	निदान इत्यादि	२४

४५ आगम वर्गीकरण						
क्रम	आगम का नाम	सूत्र		क्रम	आगम का नाम	सूत्र
०१	आचार	अंगसूत्र-१		२५	आतुरप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-२
०२	सूत्रकृत्	अंगसूत्र-२		२६	महाप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-३
०३	स्थान	अंगसूत्र-३		२७	भक्तपरिज्ञा	पयन्नासूत्र-४
०४	समवाय	अंगसूत्र-४		२८	तंदुलवैचारिक	पयन्नासूत्र-५
०५	भगवती	अंगसूत्र-५		२९	संस्तारक	पयन्नासूत्र-६
०६	ज्ञाताधर्मकथा	अंगसूत्र-६		३०.१	गच्छाचार	पयन्नासूत्र-७
०७	उपासकदशा	अंगसूत्र-७		३०.२	चन्द्रवेध्यक	पयन्नासूत्र-७
०८	अंतकृत् दशा	अंगसूत्र-८		३१	गणिविद्या	पयन्नासूत्र-८
०९	अनुत्तरोपपातिकदशा	अंगसूत्र-९		३२	देवेन्द्रस्तव	पयन्नासूत्र-९
१०	प्रश्नव्याकरणदशा	अंगसूत्र-१०		३३	वीरस्तव	पयन्नासूत्र-१०
११	विपाकश्रुत	अंगसूत्र-११		३४	निशीथ	छेदसूत्र-१
१२	औपपातिक	उपांगसूत्र-१		३५	बृहत्कल्प	छेदसूत्र-२
१३	राजप्रश्निय	उपांगसूत्र-२		३६	व्यवहार	छेदसूत्र-३
१४	जीवाजीवाभिगम	उपांगसूत्र-३		३७	दशाश्रुतस्कन्ध	छेदसूत्र-४
१५	प्रज्ञापना	उपांगसूत्र-४		३८	जीतकल्प	छेदसूत्र-५
१६	सूर्यप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-५		३९	महानिशीथ	छेदसूत्र-६
१७	चन्द्रप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-६		४०	आवश्यक	मूलसूत्र-१
१८	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-७		४१.१	ओघनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
१९	निरयावलिका	उपांगसूत्र-८		४१.२	पिंडनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
२०	कल्पवतंसिका	उपांगसूत्र-९		४२	दशवैकालिक	मूलसूत्र-३
२१	पुष्पिका	उपांगसूत्र-१०		४३	उत्तराध्ययन	मूलसूत्र-४
२२	पुष्पचूलिका	उपांगसूत्र-११		४४	नन्दी	चूलिकासूत्र-१
२३	वृष्णिदशा	उपांगसूत्र-१२		४५	अनुयोगद्वार	चूलिकासूत्र-२
२४	चतु:शरण	पयन्नासूत्र-१		---	----------	-----

मुनि दीपरत्नसागरजी प्रकाशित साहित्य

आगम साहित्य			आगम साहित्य		
क्र	साहित्य नाम	बूक्स	क्रम	साहित्य नाम	बूक्स
1	मूल आगम साहित्य:-	147	6	आगम अन्य साहित्य:-	10
	-1- आगमसुत्ताणि-मूलं prin	[49]		-1- આગમ કથાનુયોગ	06
	-2- आगमसुत्ताणि-मूलं Net	[45]		-2- आगम संबंधी साहित्य	02
	-3- आगममञ्जूषा (मूल प्रत)	[53]		-3- ऋषिभाषित सूत्राणि	01
2	आगम अनुवाद साहित्य:-	165		-4- आगमिय सूक्तावली	01
	-1- આગમસૂત્ર ગુજરાતી અનુવાદ	[47]		आगम साहित्य- कुल पुस्तक	516
	-2- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद Net	[47]			
	-3- AagamSootra English Trans.	[11]			
	-4- આગમસૂત્ર સટીક ગુજરાતી અનુવાદ	[48]			
	-5- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद prin	[12]		अन्य साहित्य:-	
3	आगम विवेचन साहित्य:-	171	1	तत्त्वाभ्यास साहित्य-	13
	-1- आगमसूत्र सटीकं	[46]	2	सूत्राभ्यास साहित्य-	06
	-2- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-1	[51]	3	व्याकरण साहित्य-	05
	-3- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-2	[09]	4	व्याख्यान साहित्य-	04
	-4- आगम चूर्णि साहित्य	[09]	5	जिनभक्ति साहित्य-	09
	-5- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-1	[40]	6	विधि साहित्य-	04
	-6- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-2	[08]	7	आराधना साहित्य	03
	-7- सचूर्णिक आगमसुत्ताणि	[08]	8	परिचय साहित्य-	04
4	आगम कोष साहित्य:-	14	9	पूजन साहित्य-	02
	-1- आगम सद्दकोसो	[04]	10	तीर्थंकर संक्षिप्त दर्शन	25
	-2- आगम कहाकोसो	[01]	11	प्रकीर्ण साहित्य-	05
	-3- आगम-सागर-कोष:	[05]	12	दीपरत्नसागरना लघुशोधनिबंध	05
	-4- आगम-शब्दादि-संग्रह (प्रा-सं-गु)	[04]		आगम सिवायनुं साहित्य कूल पुस्तक	85
5	आगम अनुक्रम साहित्य:-	09			
	-1- આગમ વિષયાનુક્રમ- (મૂળ)	02		1-आगम साहित्य (कुल पुस्तक)	516
	-2- आगम विषयानुक्रम (सटीकं)	04		2-आगमेतर साहित्य (कुल	085
	-3- आगम सूत्र-गाथा अनुक्रम	03		दीपरत्नसागरजी के कुल प्रकाशन	601

મુનિ દીપરત્નસાગરનું સાહિત્ય

1	મુનિ દીપરત્નસાગરનું આગમ સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 516]	તેના કુલ પાના [98,300]
2	મુનિ દીપરત્નસાગરનું અન્ય સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 85]	તેના કુલ પાના [09,270]
3	મુનિ દીપરત્નસાગર સંકલિત 'तत्त्वार्थसूत्र'ની વિશિષ્ટ DVD		તેના કુલ પાના [27,930]

અમારા પ્રકાશનો કુલ ૬૦૧ + વિશિષ્ટ DVD કુલ પાના 1,35,500

[३७] दशाश्रुतस्कन्ध
छेदसूत्र-४- हिन्दी अनुवाद

दशा-१-असमाधिस्थान

संयम के सामान्य दोष या अतिचार को यहाँ 'असमाधि-स्थान' बताया है । जैसे शरीर की समाधि-शान्ति पूर्ण अवस्था में मामूली बीमारी या दर्द बाधक बनते हैं । काँटा लगा हो या दाँत, कान, गले में कोई दर्द हो या शर्दी जैसा मामूली व्याधि हो तो भी शरीर की समाधि-स्वस्थता नहीं रहती वैसे संयम में छोटे या अल्प दोष से भी स्वस्थता नहीं रहती । इसलिए इन स्थान को असमाधि स्थान बताए हैं । जो इस पहली दशा में बयान किए हैं ।

सूत्र - १

अरिहंत को मेरे नमस्कार हो, सिद्ध को मेरे नमस्कार हो, आचार्य को मेरे नमस्कार हो, उपाध्याय को मेरे नमस्कार हो, लोक में रहे सभी साधु को मेरे नमस्कार हो, इन पाँचों को किए नमस्कार-सर्व पाप के नाशक हैं, सर्व मंगल में उत्कृष्ट मंगल हैं । हे आयुष्मन् ! वो निर्वाण प्राप्त भगवंत के स्वमुख से मैंने ऐसा सुना है ।

सूत्र - २

यह (जिन प्रवचन में) निश्चय से स्थविर भगवंत ने बीस असमाधि स्थान बताए हैं । स्थविर भगवंत ने कौन-से बीस असमाधि स्थान बताए हैं ?

१. अति शीघ्र चलनेवाले होना ।

२. अप्रमार्जिताचारी होना –रजोहरणादि से प्रमार्जन किया न हो ऐसे स्थान में चलना (बैठना-सोना आदि)।

३. दुष्प्रमार्जिताचारी होना – उपयोग रहितपन से या इधर-उधर देखते-देखते प्रमार्जना करना ।

४. अधिक शय्या-आसन रखना, शरीर प्रमाण लम्बाईवाली शय्या, आतापना-स्वाध्याय आदि जिस पर किया जाए वो आसन । वो प्रमाण से ज्यादा रखना ।

५. दीक्षापर्याय में बड़ों के सामने बोलना ।

६. स्थविर और उपलक्षण से मुनि मात्र के घात के लिए सोचना ।

७. पृथ्विकाय आदि जीव का घात करे ।

८. आक्रोश करना, जलते रहना ।

९. क्रोध करना, स्व-पर संताप करना ।

१०. पीठ पीछे निंदा करनेवाले होना ।

११. बार-बार निश्चयकारी बोली बोलना ।

१२. अनुत्पन्न ऐसे नए झगड़े उत्पन्न करना ।

१३. क्षमापना से उपशान्त किए गए पुराने कलह-झगड़े फिर से उत्पन्न करना ।

१४. अकाल-स्वाध्याय के लिए वर्जित काल, उसमें स्वाध्याय करना ।

१५. सचित्त रजयुक्त हाथ-पाँववाले आदमी से भिक्षादि ग्रहण करना ।

१६. अनावश्यक जोर-जोर से बोलना, आवाझ करना ।

१७. संघ या गण में भेद उत्पन्न करनेवाले वचन बोलना ।

१८. कलह यानि वाग्युद्ध या झगड़े करना ।

१९. सूर्योदय से सूर्यास्त तक कुछ न कुछ खाते रहना ।

२०. निर्दोष भिक्षा आदि की खोज करने में सावधान न रहना ।

स्थविर भगवंत ने यह बीस असमाधि स्थान बताए हैं उस प्रकार मैं कहता हूँ । लेकिन यहाँ बीस की गिनती एक आधाररूप से रखी गई है । इस प्रकार के अन्य कईं असमाधिस्थान हो सकते हैं । लेकिन उन सबका समावेश इस बीस की अंतर्गत् जानना-समझना जैसे कि ज्यादा शय्या-आसन रखना । तो वहाँ अधिक वस्त्र, पात्र, उपकरण वो सब दोष सामिल हो ऐसा समझ लेना ।

चित्त समाधि के लिए यह सब असमाधि स्थान का त्याग करना ।

दशा-१-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

दशा-२-सबला

सबल का सामान्य अर्थ विशेष बलवान या भारी होता है । संयम के सामान्य दोष पहली दसा में बताए उसकी तुलना में बड़े या विशेष दोष का इस दसा में वर्णन है ।

सूत्र - ३

हे आयुष्मान् ! वो निर्वाण प्राप्त भगवंत के स्वमुख से मैंने इस प्रकार सूना है । यह आर्हत् प्रवचन में स्थविर भगवंत ने वाकई ईक्कीस सबल (दोष) प्ररूपे हैं । वो स्थविर भगवंत ने वाकई कौन-से ईक्कीस सबल दोष बताए हैं ? स्थविर भगवंत ने निश्चय से जो ईक्कीस-सबल दोष बताए हैं वो इस प्रकार है –

१. हस्त-कर्म करना, मैथुन सम्बन्धी विषयेच्छा को पोषने के लिए हाथ से शरीर के किसी अंग-उपांग आदि का संचालन आदि करना ।

२. मैथुन प्रतिसेवन करना ।

३. रात्रि भोजन करना । रात्रि को अशन, पान, खादिम या स्वादिम का आहार करना ।

४. आधाकर्मिक-साधु के निमित्त से बने हुए आहार खाना ।

५. राजा निमित्त से बने अशन-आदि आहार खाना ।

६. क्रित-खरीदे हुए, उधार लिए हुए, छिने हुए, आज्ञा बिना दिए गए या साधु के लिए सामने से लाकर दिया गया आहार खाना ।

७. बार-बार प्रत्याख्यान करके, प्रत्याख्यान हो वो ही अशन-आदि लेना ।

८. छ मास के भीतर एक गण में से दूसरे गण में गमन करना ।

९. एक मास में तीन बार (जलाशय आदि करके) उदक लेप यानि सचित्त पानी का संस्पर्श करना ।

१०. एक मास में तीन बार माया-स्थल (छल-कपट) करना ।

११. सागारिक (गृहस्थ, स्थानदाता या सज्जातर) के अशन आदि आहार खाना ।

१२-१५. जान-बूझकर प्राणातिपात (जीव का घात), मृषावाद (असत्य बोलना), अदत्तादान (नहीं दी गई चीज का ग्रहण), सचित्त पृथ्वी या सचित्त रज पर कायोत्सर्ग, बैठना, सोना, स्वाध्याय आदि करना ।

१६-१८. जान-बूझकर स्निग्ध, गीली, सचित्त रजयुक्त पृथ्वी पर, सचित्त शीला, पत्थर, धुणावाला या सचित्त लकड़े पर, अंड़ बेइन्द्रिय आदि जीव, सचित्त बीज, तृण आदि झाकल-पानी, चींटी के नगर-सेवाल-गीली मिट्टी या मकड़ी के जाले से युक्त ऐसे स्थान पर कायोत्सर्ग, बैठना, सोना, स्वाध्याय आदि क्रिया करना । मूल, कंद, स्कंध, छिलका, कुंपण, पत्ते, बीज और हरित वनस्पति का भोजन करना ।

१९-२०. एक साल में दस बार उदकलेप (जलाशय को पार करने के द्वारा जल संस्पर्श) और माया-स्थान (छल कपट) करना ।

२१. जान-बूझकर सचित्त पानी युक्त हाथ, पात्र, कड़छी या बरतन से कोई अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार दे तब ग्रहण करना । स्थविर भगवंत ने निश्चय से यह २१ सबल दोष कहे हैं । उस प्रकार मैं कहता हूँ ।

यहाँ अतिक्रम-व्यतिक्रम और अतिचार वो तीन भेद से सबल दोष की विचारणा करना । दोष के लिए सोचना वो अतिक्रम, एक भी ड़ग भरना वो व्यतिक्रम और प्रवृत्ति करने की तैयारी यानि अतिचार (दोष का सेवन तो साफ अनाचार ही है ।) इस सबल दोष का सेवन करनेवाला सबल-आचारी कहलाता है ।

जो कि सबल दोष की यह गिनती केवल २१ नहीं है । वो तो केवल आधार है । ये या इनके जैसे अन्य दोष भी यहाँ समझ लेना ।

दशा-२-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

दशा-३-आशातना

आशातना यानि विपरीत व्यवहार, अपमान या तिरस्कार जो ज्ञान-दर्शन का खंड़न करे, उसकी लघुता या तिरस्कार करे उसे आशातना कहते हैं । ऐसी आशातना के कईं भेद हैं । उसमें से यहाँ केवल-३३ आशातना ही कही है । ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुण में अधिकतावाले या दीक्षा, पदवी आदि में बड़े हो उनके प्रति हुए अधिक अवज्ञा या तिरस्कार समान आशातना का यहाँ वर्णन है ।

सूत्र - ४

हे आयुष्मान् ! उस निर्वाण प्राप्त भगवंत के स्व-मुख से मैंने इस प्रकार सूना है । यह आर्हत् प्रवचन में स्थविर भगवंत ने वाकई में ३३-आशातना प्ररूपी है । उस स्थविर भगवंत ने सचमुच कौन-सी ३३-आशातना बताई है ? वो स्थविर भगवंत ने सचमुच जो ३३-आशातना बताई है वह इस प्रकार है –

१-९. शैक्ष (अल्प दीक्षा पर्यायवाले साधु) रत्नाधिक (बड़े दीक्षापर्याय या विशेष गुणवान् साधु) के आगे चले, साथ-साथ चले, अति निकट चले, आगे, साथ-साथ या अति निकट खड़े रहे, आगे, साथ-साथ या अति निकट बैठे ।

१०-११. रात्निक साधु के साथ बाहर बिचार भूमि (मल त्याग जगह) गए शैक्ष कारण से एक ही जलपात्र ले गए हो उस हालात में वो शैक्ष रात्निक की पहले शौच-शुद्धि करे, बाहर बिचार भूमि या विहार भूमि (स्वाध्याय-स्थल) गए हो तब रात्निक के पहले ऐर्यापथिक-प्रतिक्रमण करे ।

१२. किसी व्यक्ति रात्निक के पास वार्तालाप के लिए आए तब शैक्ष उसके पहले ही वार्तालाप करने लगे।

१३. रात या विकाल में (सन्ध्या के वक्त) यदि रात्निक शैक्ष को सम्बोधन करके पूछे कि हे आर्य ! कौन-कौन सो रहे हैं और कौन-कौन जागते हैं तब वो शैक्ष, रात्निक या वचन पूरा सूना-अनसूना कर दे और प्रत्युत्तर न दे

१४-१८. शैक्ष यदि अशन, पान, खादिम, स्वादिम समान आहार लाए तब उसकी आलोचना के पहले कोई शैक्ष के पास करे फिर रात्निक के पास करे, पहले किसी शैक्ष को बताए, निमंत्रित करे फिर रात्निक को दिखाए या निमंत्रणा करे, रात्निक के साथ गए हो तो भी उसे पूछे बिना जो-जो साधु को देने की ईच्छा हो उसे जल्द अधिक प्रमाण में वो अशन आदि दे और रात्निक साधु के साथ आहार करते वक्त प्रशस्त, उत्तम, रसयुक्त, स्निग्ध, रूखा आदि चीज उस शैक्ष को मनोकुल हो तो जल्द या ज्यादा प्रमाण में खाए ।

१९-२१. रात्निक (गुणाधिक) शैक्ष (छोटे दीक्षा पर्यायवाले साधु) को बुलाए तब उसकी बात सूना-अनसूना करके मौन रहे, अपने स्थान पर बैठकर उनकी बात सूने लेकिन सन्मुख उपस्थित न हो, ''क्या कहा ?'' ऐसा कहे।

२२-२४. शैक्ष, रात्निक को तूं ऐसे एकवचनी शब्द बोले, उनके आगे निरर्थक बक-बक करे, उनके द्वारा कहे गए शब्द उन्हें कहकर सुनाए (तिरस्कार से ''तुम तो ऐसा कहते थे'' ऐसा सामने बोले ।)

२५-३०. जब रात्निक (गुणाधिक साधु) कथा कहते हो तब वो शैक्ष ''यह ऐसे कहना चाहिए'' ऐसा बोले, ''तुम भूल रहे हो-तुम्हें याद नहीं है ।'' ऐसा बोले, दुर्भाव प्रकट करे, (किसी बहाना करके) सभा विसर्जन करने के लिए आग्रह करे, कथा में विघ्न उत्पन्न करे, जब तक पर्षदा (सभा) पूरी न हो, छिन्न-भिन्न न हो या बैर-बिखेर न हो लेकिन हाजिर हो तब तक उसी कथा को दो-तीन बार कहे ।

३१-३३. शैक्ष यदि रात्निक साधु के शय्या या संथारा पर गलती से पाँव लग जाए तब हाथ जोड़कर क्षमा याचना किए बिना चले जाए, रात्निक की शय्या-संथारा पर खड़े रहे-बैठे या सो जाए या उससे ऊंचे या समान आसन पर बैठे या सो जाए । उस स्थविर भगवंत ने सचमुच यह तैंतीस आशातना बताई है । ऐसा (उस प्रकार) मैं (तुम्हें) कहता हूँ ।

दशा-३-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

दशा-४-गणिसंपदा

पहले, दूसरे, तीसरे अध्ययन में कहे गए दोष शैक्ष को त्याग करने के लिए उचित हैं । उन सबका परित्याग करने से वो शैक्ष गणिसंपदा योग्य होता है । इसलिए अब इस ''दशा'' में आठ प्रकार की गणिसंपदा का वर्णन है ।

सूत्र - ५

हे आयुष्मान् ! उस निर्वाण प्राप्त भगवंत के स्व-मुख से मैंने इस प्रकार सूना है । यह (आर्हत् प्रवचन में) स्थविर भगवंत ने सचमुच आठ प्रकार की गणिसंपदा कही है । उस स्थविर भगवंत ने वाकई, कौन सी आठ प्रकार की गणिसंपदा बताई है ? उस स्थविर भगवंत ने सचमुच जो ८-प्रकार की संपदा कही है वो इस प्रकार है–आचार, सूत्र, शरीर, वचन, वाचना, मति, प्रयोग और संग्रह परिज्ञा ।

सूत्र - ६

वो आचार संपदा कौन-सी हैं ? आचार यानि भगवंत की प्ररूपी हुई आचरणा या मर्यादा दूसरी प्रकार से कहे तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य उन पाँच की आचरणा, संपदा यानि संपत्ति । यह आचार संपत्ति चार प्रकार से हैं वो इस प्रकार – संयम क्रिया में सदा जुड़े रहना, अहंकार रहित होना, अनियत विहार होना यानि एक स्थान पर स्थायी होकर न रहना, स्थविर की माफिक यानि श्रुत और दीक्षा पर्याय ज्येष्ठ की प्रकार गम्भीर स्वभाववाले होना ।

सूत्र - ७

वो श्रुत-संपत्ति कौन-सी है ? (श्रुत यानि आगम या शास्त्रज्ञान) यह श्रुत संपत्ति चार प्रकार से बताई है । वो इस प्रकार – बहुश्रुतता-कईं शास्त्र के ज्ञाता होना, परिचितता-सूत्रार्थ से अच्छी प्रकार परिचित होना । विचित्र श्रुतता-स्वसमय और परसमय के तथा उत्सर्ग-अपवाद के ज्ञाता होना, घोषविशुद्धि कारकता-शुद्ध उच्चारण वाले होना ।

सूत्र - ८

वो शरीर संपत्ति कौन-सी है ? शरीर संपत्ति चारप्रकार से । वो ऐसे–शरीर की लम्बाई-चौड़ाई का सही नाप होना, कुरूप या लज्जा पैदा करे ऐसे शरीरवाले न होना, शरीर संहनन सुद्रढ़ होना, पाँच इन्द्रिय परिपूर्ण होना ।

सूत्र - ९

वो वचन संपत्ति कौन-सी है ? (वचन यानि भाषा) वचन संपत्ति चार प्रकार की बताई है । वो इस प्रकार–आदेयता, जिसका वचन सर्वजन माननीय हो, मधुर वचनवाले होना, अनिश्रितता राग-द्वेष रहित यानि कि निष्पक्ष पाती वचनवाले होना, असंदिग्धता-संदेह रहित वचनवाले होना ।

सूत्र - १०

वो वाचना संपत्ति कौन-सी है ? वाचना संपत्ति चार प्रकार से बताई है । वो इस प्रकार–शिल्प की योग्यता को तय करनेवाली होना, सोचपूर्वक अध्यापन करवानेवाली होना, लायकात अनुसार उपयुक्त शिक्षा देनेवाली हो, अर्थ-संगतिपूर्वक नय-प्रमाण से अध्यापन करनेवाली हो ।

सूत्र - ११

वो मति संपत्ति कौन-सी है ? (मति यानि जल्द से चीज को ग्रहण करना) मति संपत्ति चार प्रकार से बताई है । वो इस प्रकार–अवग्रह सामान्य रूप में अर्थ को जानना, ईहा विशेष रूप में अर्थ जानना, अवाय-ईहित चीज का विशेष रूप से निश्चय करना, धारणा-जानी हुई चीज का कालान्तर में भी स्मरण रखना ।

वो अवग्रहमति संपत्ति कौन-सी है ? अवग्रहमति संपत्ति छ प्रकार से बताई है । शीघ्र ग्रहण करना, एक साथ कईं अर्थ ग्रहण करना, अनिश्रित अर्थ को अनुमान से ग्रहण करना, संदेह रहित होकर अर्थ ग्रहण करना ।

उसी प्रकार ईहा और अपाय मतिसंपत्ति छ प्रकार से जानना ।

वो धारणा मति-संपत्ति कौन-सी है ? धारणा मतिसंपत्ति छ प्रकार से बताई है । कईं अर्थ, कईं प्रकार के अर्थ, पहले की बात, अनुक्त अर्थ का अनुमान से निश्चय और ज्ञात अर्थ को संदेह रहित होकर धारण करना । वो धारणा मति संपत्ति है ।

सूत्र - १२

वो प्रयोग संपत्ति कौन-सी है ? वो प्रयोग-संपत्ति चार प्रकार से है । वो इस प्रकार–अपनी शक्ति जानकर वादविवाद करना, सभा के भावों को जानकर, क्षेत्र की जानकारी पाकर, वस्तु विषय को जानकर पुरुष विशेष के साथ वाद-विवाद करना यह प्रयोग-संपत्ति ।

सूत्र - १३

वो संग्रह परिज्ञा संपत्ति कौन-सी है ? संग्रह परिज्ञा संपत्ति चार प्रकार से । वो इस प्रकार–वर्षावास के लिए कईं मुनि को रहने के उचित स्थान देखना, कईं मुनिजन के लिए वापस करना कहकर पीठ फलक शय्या संथारा ग्रहण करना, काल को आश्रित करके कालोचित कार्य करना, करवाना, गुरुजन का उचित पूजा-सत्कार करना ।

सूत्र - १४

आठ प्रकार की संपदा के वर्णन के बाद अब गणि का कर्तव्य कहते हैं । आचार्य अपने शिष्य को आचार-विनय, श्रुत विनय, विक्षेपणा – (मिथ्यात्व में से सम्यक्त्व में स्थापना करने समान) विनय और दोष निर्घातन–(दोष का नाश करने समान) विनय ।

वो आचार विनय क्या है ? आचार-विनय (पाँच प्रकार के आचार या आठ कर्म के विनाश करनेवाला आचार यानि आचार विनय) चार प्रकार से कहा है ।

संयम के भेद प्रभेद का ज्ञान करवाकर आचरण करवाना, गण-सामाचारी, साधु संघ को सारणा-वारणा आदि से संभालना-ग्लान को, वृद्ध को संभालने के लिए व्यवस्था करना–दूसरे गण के साथ उचित व्यवहार करना, कब-कौन-सी अवस्था में अकेले विहार करना उस बात का ज्ञान करवाना।

वो श्रुत विनय क्या है ? श्रुत विनय चार प्रकार से बताया है । जरुरी सूत्र पढ़ाना, सूत्र के अर्थ पढ़ाना, शिष्य को हितकर उपदेश देना, प्रमाण, नय, निक्षेप, संहिता आदि से अध्यापन करवाना, यह है श्रुत विनय ।

विक्षेपणा विनय क्या है ? विक्षेपणा विनय चार प्रकार से बताया है । सम्यक्त्व रूप धर्म न जाननेवाले शिष्य को विनय संयुक्त करना, धर्म से च्युत होनेवाले शिष्य को धर्म में स्थापित करना, उस शिष्य को धर्म के हित के लिए, सुख, सामर्थ्य, मोक्ष या भवान्तर में धर्म आदि की प्राप्ति के लिए तत्पर करना, यह है विक्षेपणा विनय ।

दोष निर्घातन विनय क्या है ? दोष निर्घातन विनय चार प्रकार से बताया है । वो इस प्रकार–क्रुद्ध व्यक्ति का क्रोध दूर करवाए, दुष्ट-दोषवाली व्यक्ति के दोष दूर करना, आकांक्षा, अभिलाषावाली व्यक्ति की आकांक्षा का निवारण करना, आत्मा को सुप्रणिहित श्रद्धा आदि युक्त रखना । यह है दोष-निर्घातन विनय ।

सूत्र - १५

इस प्रकार शिष्य की (ऊपर बताए अनुसार) चार प्रकार से विनय प्रतिपत्ति यानि गुरु भक्ति होती है । वो इस प्रकार–संयम के साधक वस्त्र, पात्र आदि पाना, बाल ग्लान असक्त साधु की सहायता करना, गण और गणि के गुण प्रकाशित करना, गण का बोझ वहन करना ।

उपकरण उत्पादन क्या है ? वो चार प्रकार से बताया है–नवीन उपकरण पाना, पूराने उपकरण का संरक्षण और संगोपन करना, अल्प उपकरणवाले को उपकरण की पूर्ति करना, शिष्य के लिए उचित विभाग करना ।

सहायता विनय क्या है ? सहायता विनय चार प्रकार से बताया है–गुरु की आज्ञा को आदर के साथ

स्वीकार करना, गुरु की आज्ञा के मुताबिक शरीर की क्रिया करना, गुरु के शरीर की यथा उचित सेवा करना, सर्व कार्य में कुटिलता रहित व्यवहार करना ।

वर्ण संज्वलनता विनय क्या है ? वर्ण संज्वलनता विनय चार प्रकार से बताया है – वीतराग वचन तत्पर गणि और गण के गुण की प्रशंसा करना, गणी-गण के निंदक को निरुत्तर करना, गणी गण के गुणगान करनेवाले को प्रोत्साहित करना, खुद बुझुर्ग की सेवा करना, यह है वर्ण संज्वलनता विनय ।

भार प्रत्यारोहणता विनय क्या है ? भार प्रत्यारोहणता विनय चार प्रकार से है – निराश्रित शिष्य का संग्रह करना, गण में स्थापित करना, नवदीक्षित को आचार और गोचरी की विधि समझाना । साधर्मिक ग्लान साधु की यथाशक्ति वैयावच्च के लिए तत्पर रहना, साधर्मिक में आपस में क्लेश-कलह होने पर राग-द्वेष रहितता से निष्पक्ष या माध्यस्थ भाव से सम्यक् व्यवहार का पालन करके उस कलह के क्षमापन और उपशमन के लिए तैयार रहे ।

वो ऐसा क्यों करे ? ऐसा करने से साधर्मिक कुछ बोलेंगे नहीं, झंझट पैदा नहीं होगा, कलह-कषाय न होंगे और फिर साधर्मिक संयम-संवर और समाधि में बहुलतावाले और अप्रमत्त होकर संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरेंगे । यह भार प्रत्यारोहणता विनय है ।

इस प्रकार स्थविर भगवंतने निश्चय से आठ प्रकार की गणिसंपदा बताई है, उस प्रकार मैं (तुम्हें) कहता हूँ

दशा-४-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

दशा-५-चित्तसमाधिस्थान

जिस प्रकार सांसारिक आत्मा को धन, वैभव, भौतिक चीज की प्राप्ति आदि होने से चित्त आनन्दमय होता है, उसी प्रकार मुमुक्षु आत्मा या साधुजन को आत्मगुण की अनुपम उपलब्धि से अनुपम चित्तसमाधि प्राप्त होती है। जिन चित्तसमाधि स्थान का इस 'दशा' में वर्णन किया है ।

सूत्र - १६

हे आयुष्मान् ! वो निर्वाण-प्राप्त भगवंत के मुख से मैंने ऐसा सूना है–इस (जिन प्रवचन में) निश्चय से स्थविर भगवंत ने दश चित्त समाधि स्थान बताए हैं । वो कौन-से दश चित्त समाधि स्थान स्थविर भगवंत ने बताए हैं? जो दश चित्त समाधि स्थान स्थविर भगवंत ने बताए हैं वो इस प्रकार है –

उस काल और उस समय यानि चौथे आरे में भगवान महावीर स्वामी के विचरण के वक्त वाणिज्यग्राम नगर था । नगरवर्णन (उववाई सूत्र के) चंपानगरी प्रकार जानना । वो वाणिज्यग्राम नगर के बाहर दूतिपलाशक चैत्य था, चैत्यवर्णन (उववाई सूत्र की प्रकार) जानना । (वहाँ) जितशत्रु राजा, उसकी धारिणी रानी उस प्रकार से सर्व समोवसरण (उववाई सूत्र अनुसार) जानना । यावत् पृथ्वी-शिलापट्टक पर वर्धमान स्वामी बिराजे, पर्षदा नीकली और भगवान ने धर्म निरूपण किया, पर्षदा वापस लौटी ।

सूत्र - १७

हे आर्य ! इस प्रकार सम्बोधन करके श्रमण भगवान महावीर साधु और साध्वी को कहने लगे । हे आर्य ! इर्या-भाषा-एषणा-आदान भांड़ मात्र निक्षेपणा और उच्चार प्रस्नवण खेल सिंधाणक जल की परिष्ठापना, वो पाँच समितिवाले, गुप्तेन्द्रिय, गुप्तब्रह्मचारी, आत्मार्थी, आत्महितकर, आत्मयोगी, आत्मपराक्रमी, पाक्षिक पौषध (यानि पर्वतिथि को उपवास आदि व्रत से धर्म की पुष्टि समान पौषध) में समाधि प्राप्त और शुभ ध्यान करनेवाले निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी को पहले उत्पन्न न हुई हो वैसी चित्त (प्रशस्त) समाधि के दश स्थान उत्पन्न होते हैं। वो इस प्रकार –पहले कभी भी उत्पन्न न होनेवाली नीचे बताई गई दश वस्तु उद्भव हो जाए तो चित्त को समाधि प्राप्त होती है ।

(१) धर्म भावना, जिनसे सभी धर्मो को जान सकते हैं ।
(२) संज्ञि-जातिस्मरणज्ञान, जिनसे अपने पूर्व के भव और जाति का स्मरण होता है ।
(३) स्वप्न दर्शन का यथार्थ अहसास ।
(४) देवदर्शन जिससे दिव्य ऋद्धि-दिव्य कान्ति-देवानुभाव देख सकते हैं ।
(५) अवधिज्ञान, जिससे लोक को जानते हैं ।
(६) अवधिदर्शन, जिससे लोक को देख सकते हैं ।
(७) मनःपर्यवज्ञान, जिससे ढाई द्वीप के संज्ञी-पंचेन्द्रिय के मनोगत भाव को जानते हैं ।
(८) केवलज्ञान, जिससे सम्पूर्ण लोक-अलोक को जानते हैं ।
(९) केवलदर्शन, जिससे सम्पूर्ण लोक-अलोक को देखते हैं ।
(१०) केवल मरण, जिससे सर्व दुःख का सर्वथा अभाव होता है ।

सूत्र - १८

रागद्वेष रहित निर्मल चित्त को धारण करने से एकाग्रता समान ध्यान उत्पन्न होता है । शंकरहित धर्म में स्थित आत्मा निर्वाण प्राप्त करती है ।

सूत्र - १९

इस प्रकार से चित्त समाधि धारण करनेवाली आत्मा दूसरी बार लोक में उत्पन्न नहीं होती और अपने अपने उत्तम स्थान को जातिस्मरण ज्ञान से जान लेता है ।

सूत्र - २०

संवृत्त आत्मा यथातथ्य सपने को देखकर जल्द से सारे संसार समुद्र को पार कर लेता है और तमाम दुःख से छूटकारा पा लेता है ।

सूत्र - २१

अंतप्रान्त भोजी, विविक्त, शयन, आसन सेवन करके, अल्प आहार करनेवाले, इन्द्रिय का दमन करनेवाले, षट्काय रक्षक मुनि को देवों के दर्शन होते हैं ।

सूत्र - २२

सर्वकामभोग से विरक्त, भीम-भैरव, परिषह-उपसर्ग सहनेवाले तपस्वी संयत को अवधिज्ञान उत्पन्न होता है

सूत्र – २३, २४

जिसने तप द्वारा लेश्या को दूर किया है उसका अवधि दर्शन अति विशुद्ध हो जाता है और उसके द्वारा सर्व-उर्ध्व-अधो तिर्यक्लोक को देख सकते हैं ।सुसमाधियुक्त प्रशस्त लेश्यावाले, वितर्करहित भिक्षु और सर्व बंधन से मुक्त आत्मा मन के पर्याय को जानते हैं । (यानि कि मनःपर्यवज्ञानी होते हैं)

सूत्र - २५

जब जीव के समस्त ज्ञानावरण कर्म क्षय हो तब वो केवली जिन समस्त लोक और अलोक को जानते हैं ।

सूत्र - २६

जब जीव के समस्त दर्शनावरण कर्म का क्षय हो तब वो केवली जिन समस्त लोकालोक को देखते हैं ।

सूत्र - २७

प्रतिमा यानि प्रतिज्ञा के विशुद्ध रूप से आराधना करनेवाले और मोहनीय कर्म का क्षय होने से सुसमाहित आत्मा पूरे लोकालोक को देखता है ।

सूत्र – २८-३०

जिस प्रकार ताल वृक्ष पर सूई लगाने से समग्र तालवृक्ष नष्ट होता है, जिस प्रकार सेनापति की मौत के साथ पूरी सेना नष्ट होती है, जिस प्रकार धुँआ रहित अग्नि ईंधण के अभाव से क्षय होता है, उसी प्रकार मोहनीय कर्म का (सर्वथा) क्षय होने से बाकी सर्व कर्म का क्षय या विनाश होता है ।

सूत्र – ३१, ३२

जिस प्रकार सूखे मूलवाला वृक्ष जल सींचन के बाद भी पुनः अंकुरित नहीं होता, उसी प्रकार मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय होने से बाकी कर्म उत्पन्न नहीं होते । जिस प्रकार बीज जल गया हो तो पुनः अंकुर उत्पन्न नहीं होता उसी प्रकार कर्म बीज के जल जाने के बाद भव समान अंकुर उत्पन्न नहीं होते ।

सूत्र - ३३

औदारिक शरीर का त्याग करके, नाम, गोत्र, आयु और वेदनीय कर्म का छेदन करके केवली भगवंत कर्मरज से सर्वथा रहित हो जाते हैं ।

सूत्र - ३४

हे आयुष्मान् ! इस प्रकार (समाधि को) जानकर रागद्वेष रहित चित्त धारण करके शुद्ध श्रेणी प्राप्त करके आत्माशुद्धि को प्राप्त करते हैं । यानि क्षपक श्रेणी प्राप्त करके मोक्ष में जाते हैं । उस प्रकार मैं कहता हूँ ।

दशा-५-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

दशा-६-उपासक प्रतिमा

जो आत्मा श्रमणपन के पालन के लिए असमर्थ हो वैसी आत्मा श्रमणपन का लक्ष्य रखकर उसकी उपासक बनती है । उसे समणोपासक कहते हैं । यानि वो 'उपासक' के नाम से पहचाने जाते हैं ।

ऐसे उपासक को आत्म साधना के लिए-११ प्रतिमा का यानि ११ विशिष्ट प्रतिज्ञा का आराधन बताया है, जिसका इस दशा में वर्णन किया गया है ।

सूत्र - ३५

हे आयुष्मान् ! वो निर्वाण प्राप्त भगवंत के स्वमुख से मैंने ऐसा सूना है । यह (जिन प्रवचन में) स्थविर भगवंत ने निश्चय से ग्यारह उपासक प्रतिमा बताई है । स्थविर भगवंत ने कौन-सी ग्यारह उपासक प्रतिमा बताई है? स्थविर भगवंत ने जो ११ उपासक प्रतिमा बताई है,

वो इस प्रकार है–(दर्शन, व्रत, सामायिक, पौषध, दिन में ब्रह्मचर्य, दिन-रात ब्रह्मचर्य, सचित्त-परित्याग, आरम्भ परित्याग, प्रेष्य परित्याग, उपधिभक्त-परित्याग, श्रमण-भूत) (प्रतिमा यानि विशिष्ट प्रतिज्ञा)

जो अक्रियावादी हैं और जीव आदि चीज के अस्तित्व का अपलाप करते हैं । वो नास्तिकवादी हैं, नास्तिक मतिवाला है, नास्तिक दृष्टि रखते हैं, जो सम्यक्वादी नहीं है, नित्यवादी नहीं है यानि क्षणिकवादी है, जो परलोक वादी नहीं है जो कहते हैं कि यह लोक नहीं है, परलोक नहीं है, माता नहीं, पिता नहीं, अरिहंत नहीं, चक्रवर्ती नहीं, बलदेव नहीं, वासुदेव नहीं, नर्क नहीं, नारकी नहीं, सुकृत और दुष्कृत कर्म की फलवृत्ति विशेष नहीं, सम्यक् प्रकार से आचरण किया गया कर्म शुभ फल नहीं देता, कुत्सित प्रकार से आचरण किया गया कर्म अशुभ फल नहीं देता, कल्याण कर्म और पाप कर्म फलरहित हैं । जीव परलोक में जाकर उत्पन्न नहीं होता, नरक आदि चार गति नहीं है, सिद्धि नहीं जो इस प्रकार कहता है, इस प्रकार की बुद्धिवाला है, इस प्रकार की दृष्टिवाला है, जो ऐसी उम्मीद और राग या कदाग्रह युक्त है वो मिथ्यादृष्टि जीव है ।

ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव महा ईच्छवाला, महारंभी, महापरिग्रही, अधार्मिक, अधर्मानुगामी, अधर्मसेवी, अधर्म ख्यातिवाला, अधर्मानुरागी, अधर्मद्रष्टा, अधर्मजीवी, अधर्म अनुरक्त, अधार्मिक शीलवाला, अधार्मिक आचरणवाला और अधर्म से आजीविका करते हुए विचरता है । वो मिथ्यादृष्टि नास्तिक आजीविक के लिए दूसरों को कहता है, जीव को मार डालो, उसके अंग छेदन करो, सर, पेट आदि भेदन करो, काट दो । उसके अपने हाथ लहू से भरे रहते हैं, वो चंड, रौद्र और शूद्र होता है । सोचे बिना काम करता है, साहसिक होता है, लोगों से रिश्वत लेता है । धोखा, माया, छल, कूड़, कपट और मायाजाल बनाने में माहिर होता है । वो दुःशील, दुष्टजन का परिचित, दुश्चरित, दारूण स्वभावी, दुष्टव्रती, दुष्कृत करने में आनन्दित रहता है । शील रहित, गुण प्रत्याख्यान-पौषध-उपवास न करनेवाला और असाधु होता है ।

वो जावज्जीव के लिए सर्व प्रकार के प्राणातिपात से अप्रतिविरत रहता है यानि हिंसक रहता है ।

उसी प्रकार सर्व प्रकार से मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह का भी त्याग नहीं करता ।

सर्व प्रकार से क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, आल, चुगली, निंदा, रति-अरति, माया-मृषा और मिथ्या दर्शन शल्य से जावज्जीव अविरत रहता है ।

यानि इस १८ पापस्थानक का सेवन करता रहता है ।

वो सर्व प्रकार से स्नान, मर्दन, विलेपन, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, माला, अलंकार से यावज्जीव अप्रतिविरत रहता है, शकट, रथ, यान, युग, गिल्ली, थिल्ली, शिबिका, स्यन्दमानिका, शयन, आसन, यानवाहन, भोजन, गृह सम्बन्धी वस्त्र-पात्र आदि से यावज्जीव अप्रतिविरत रहता है । सर्व, अश्व, हाथी, गाय, भैंस, भेड़-बकरे, दास-दासी, नौकर-पुरुष, सोना, धन, धान्य, मणि-मोती, शंख, मूगा से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है ।

यावज्जीव के लिए हिनाधिक तोलमाप, सर्व आरम्भ, समारम्भ, सर्व कार्य करना-करवाना, पचन-पाचन,

कूटना, पीसना, तर्जन-ताड़न, वध-बन्ध, परिक्लेश यावत् वैसे प्रकार के सावद्य और मिथ्यात्ववर्धक, दूसरे जीव के प्राणों को परिताप पहुँचानेवाला कर्म करते हैं । यह सभी पाप कार्य से अप्रतिविरत यानि जुड़ा रहता है ।

जिस प्रकार कोई पुरुष कलम, मसुर, तल, मुग, ऊड़द, बालोल, कलथी, तुवर, काले चने, ज्वार और उस प्रकार के अन्य धान्य को जीव रक्षा के भाव के सिवा क्रूरतापूर्वक उपपुरुषन करते हुए मिथ्यादंड़ प्रयोग करता है, उसी प्रकार कोई पुरुष विशेष तीतर, वटेर, लावा, कबूतर, कपिंजल, मृग, भैंस, सुकर, मगरमच्छ, गोधा, कछुआ और सर्प आदि निर्दोष जीव को क्रूरता से मिथ्या-दंड़ का प्रयोग करते हैं, यानि कि निर्दोषता से घात करते हैं ।

और फिर उसकी जो बाह्य पर्षदा है, जैसे कि–दास, दूत, वेतन से काम करनेवाले, हिस्सेदार, कर्मकर, भोग पुरुष आदि से हुए छोटे अपराध का भी खुद ही बड़ा दंड़ देते हैं । इसे दंड़ दो, इसे मुंड़न कर दो, इसकी तर्जना करो-ताड़न करो, इसे हाथ में-पाँव में, गले में सभी जगह बेड़ियाँ लगाओ, उसके दोनों पाँव में बेड़ी बाँधकर, पाँव की आँटी लगा दो, इसके हाथ काट दो, पाँव काट दो, कान काट दो, नाखून छेद दो, होठ छेद दो, सर उड़ा दो, मुँह तोड़ दो, पुरुष चिह्न काट दो, हृदय चीर दो, उसी प्रकार आँख-दाँत-मुँह-जीह्वा उखेड़ दो, इसे रस्सी से बाँधकर पेड़ पर लटका दो, बाँधकर जमीं पर घिसो, दहीं की प्रकार मंथन करो, शूली पर चड़ाओ, त्रिशूल से भेदन करो, शस्त्र से छिन्न-भिन्न कर दो, भेदन किए शरीर पर क्षार डालो, उसके झख्म पर घास ड़ालो, उसे शेर, वृषभ, साँड़ की पूँछ से बाँध दो, दावाग्नि में जला दो, टुकड़े कर के कौए को माँस खिला दो, खाना-पीना बन्द कर दो, जावज्जीव के बँधन में रखो, अन्य किसी प्रकार से कुमौत से मार ड़ालो ।

उस मिथ्यादृष्टि की जो अभ्यंतर पर्षदा है । जैसे कि माता, पिता, भाई, बहन, भार्या, पुत्री, पुत्रवधू आदि उनमें से किसी का भी थोड़ा अपराध हो तो खुद ही भारी दंड़ देते हैं । जैसे कि ठंड़े पानी में डूबोए, गर्म पानी शरीर पर ड़ाले, आग से उनके शरीर जलाए, जोत-बेंत-नेत्र आदि की रस्सी से, चाबूक से, छिवाड़ी से, मोटी वेल से, मार-मारकर दोनों बगल के चमड़े उखेड़ दे, दंड़, हड्डी, मूंड़ी, पत्थर, खप्पर से उनके शरीर को कूटे, पीसे, इस प्रकार के पुरुष वर्ग के साथ रहनेवाले मानव दुःखी रहते हैं । दूर रहे तो प्रसन्न रहते हैं । इस प्रकार का पुरुष वर्ग हंमेशा डंड़ा साथ रखते हैं । और किसी से थोड़ा भी अपराध हो तो अधिकाधिक दंड़ देने का सोचते हैं । दंड़ को आगे रखकर ही बात करते हैं ।

ऐसा पुरुष यह लोक और परलोक दोनों में अपना अहित करता है । ऐसे लोग दूसरों को दुःखी करते हैं, शोक संतप्त करते हैं, तड़पाते हैं, सताते हैं, दर्द देते हैं, पीटते हैं, परिताप पहुँचाते हैं, उस प्रकार से वध, बन्ध, क्लेश आदि पहुँचाने में जुड़े रहते हैं ।

इस प्रकार से वो स्त्री सम्बन्धी काम-भोग में मूर्छित, गृद्ध, आसक्त और पंचेन्द्रिय के विषय में डूबे रहते हैं । उस प्रकार से वो चार, पाँच, छ यावत् दश साल या उससे कम-ज्यादा काल कामभोग भुगतकर वैरभाव के सभी स्थान करके कईं अशुभ कर्म ईकट्ठे करके, जिस प्रकार लोहा या पत्थर का गोला पानी में फेंकने से जल-तल का अतिक्रमण करके नीचे तलवे में पहुँच जाए उस प्रकार से इस प्रकार का पुरुष वर्ग वज्र जैसे कईं पाप, क्लेश, कीचड़, बैर, दंभ, माया, प्रपंच, आशातना, अयश, अप्रतीतिवाला होकर प्रायः त्रसप्राणी का घात करते हुए भूमितल का अतिक्रमण करके नीचे नरकभूमि में स्थान पाते हैं ।

वो नरक भीतर से गोल और बाहर से चोरस है । नीचे छरा-अस्तरा के आकारवाली है । नित्य घोर अंधकार से व्याप्त है । चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, ज्योतिष्क की प्रभा से रहित हैं । उस नरक की भूमि चरबी, माँस, लहू, परू का समूह जैसे कीचड़ से लेपी हुई है । मल-मूत्र आदि अशुचि पदार्थ से भरी और परम गंधमय है । काली या कपोत वर्णवाली, अग्नि के वर्ण की आभावाली है, कर्कश स्पर्शवाली होने से असह्य है, अशुभ होने से वहाँ अशुभ दर्द होता है, वहाँ निद्रा नहीं ले सकते, उस नारकी के जीव उस नरक में अशुभ दर्द का प्रति वक्त अहसास करते हुए विचरते हैं । जिस प्रकार पर्वत के अग्र हिस्से पर पैदा हुआ पेड़ जड़ काटने से ऊपर का हिस्सा भारी होने से जहाँ नीचा स्थान है, जहाँ दुर्गम प्रवेश करता है या विषम जगह है वहाँ गिरता है, उसी प्रकार उपर कहने के

मुताबिक मिथ्यात्वी, घोर पापी पुरुष वर्ग एक गर्भ में से दूसरे गर्भ में, एक जन्म में से दूसरे जन्म में, एक मरण में से दूसरे मरण में, एक दुःख में से दूसरे दुःख में गिरते हैं । इस कृष्णपाक्षिक नारकी भावि में दुर्लभबोधि होती है । इस प्रकार का जीव अक्रियावादी है ।

सूत्र - ३६

क्रियावादी कौन है ? वो क्रियावादी इस प्रकार का है जो आस्तिकवादी है, आस्तिक बुद्धि है, आस्तिक दृष्टि है । सम्यक्वादी और नित्य यानि मोक्षवादी है, परलोकवादी है । वो मानते हैं कि यह लोक, परलोक है, माता-पिता है, अरिहंत चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव है, सुकृत-दुष्कृत कर्म का फल है, सदा चरित कर्म शुभ फल और असदाचरित कर्म अशुभ फल देते हैं । पुण्य-पाप फल सहित हैं । जीव परलोक में जाता है, आता है, नरक आदि चार गति है और मोक्ष भी है इस प्रकार माननेवाले आस्तिकवादी, आस्तिक बुद्धि, आस्तिक दृष्टि, स्वच्छंद, राग अभिनिविष्ट यावत् महान ईच्छावाला भी हो और उत्तर दिशावर्ती नरक में उत्पन्न भी शायद हो तो भी वो शुक्ल-पाक्षिक होता है । भावि में सुलभबोधि होकर, सुगति प्राप्त करके अन्त में मोक्षगामी होता है, वो क्रियावादी है ।

सूत्र - ३७

(उपासक प्रतिमा-१)

क्रियावादी मानव सर्व (श्रावक श्रमण) धर्म रूचिवाला होता है । लेकिन सम्यक् प्रकार से कईं शीलव्रत, गुणव्रत, प्राणातिपात आदि विरमण, पच्चक्खाण, पौषधोपवास का धारक नहीं होता (लेकिन) सम्यक् श्रद्धावाला होता है, यह प्रथम दर्शन-उपासक प्रतिमा जानना । (जो उत्कृष्ट से एक मास की होती है ।)

सूत्र - ३८

अब **दूसरी उपासक प्रतिमा** कहते हैं–

वो सर्व धर्म रुचिवाला होता है । (शुद्ध सम्यक्त्व के अलावा यति (श्रमण) के दश धर्म की दृढ़ श्रद्धावाला होता है) नियम से कईं शीलव्रत, गुणव्रत, प्राणातिपात आदि विरमण, पच्चक्खाण और पौषधोपवास का सम्यक् परिपालन करता है । लेकिन सामायिक और देसावगासिक का सम्यक् प्रतिपालन नहीं कर सकता । वो दूसरी उपासक प्रतिमा (जो व्रतप्रतिमा कहलाती है) । इस प्रतिमा का उत्कृष्ट काल दो महिने का है ।

सूत्र - ३९

अब **तीसरी उपासक प्रतिमा** कहते हैं–

वो सर्व धर्म रुचिवाला और पूर्वोक्त दोनों प्रतिमा का सम्यक् परिपालक होता है । वो नियम से कईं शीलव्रत, गुणव्रत, प्राणातिपात–आदि विरमण, पच्चक्खाण, पौषधोपवास का सम्यक् प्रकार से प्रतिपालन करता है । सामायिक और देसावकासिक व्रत का भी सम्यक् अनुपालक होता है । लेकिन वो चौदश, आठम, अमावास और पूनम उन तिथि में प्रतिपूर्ण पौषधोपवास का सम्यक् परिपालन नहीं कर सकता । वो तीसरी (सामायिक) उपासक प्रतिमा (इस सामायिक प्रतिमा के पालन का उत्कृष्ट काल तीन महिने है)

सूत्र - ४०

अब **चौथी उपासक प्रतिमा** कहते हैं ।

वो सर्व धर्म रूचिवाला (यावत् यह पहले कही गई तीनों प्रतिमा का उचित अनुपालन करनेवाला होता है ।) वो नियम से बहुत शीलव्रत, गुणव्रत, प्राणातिपात आदि विरमण, पच्चक्खाण, पौषधोपवास और सामायिक, देशावकासिक का सम्यक् परिपालन करता है । (लेकिन) एक रात्रि की उपासक प्रतिमा का सम्यक् परिपालन नहीं कर सकता । यह चौथी (पौषध नाम की) उपासक प्रतिमा बताई (जिसका उत्कृष्ट काल चार मास है ।)

सूत्र - ४१

अब **पाँचवी उपासक प्रतिमा** कहते हैं ।

वो सर्व धर्म रूचिवाला होता है । (यावत् पूर्वोक्त चार प्रतिमा का सम्यक् परिपालन करनेवाला होता है ।) वो नियम से कईं शीलव्रत, गुणव्रत, प्राणातिपात आदि विरमण, पच्चक्खाण, पौषधोपवास का सम्यक् परिपालन करता है । वो सामायिक देशावकासिक व्रत का यथासूत्र, यथाकल्प, यथातथ्य, यथामार्ग शरीर से सम्यक् प्रकार से स्पर्श करनेवाला, पालन, शोधन, कीर्तन करते हुए जिनाज्ञा मुताबिक अनुपालक होता है । वो चौदश आदि पर्व तिथि पर पौषध का अनुपालक होता है एक रात्रि की उपासक प्रतिमा का सम्यक् अनुपालन करता है । वो स्नान नहीं करता, रात्रि भोजन नहीं करता, वो मुकुलीकृत यानि धोति की पाटली नहीं बाँधता, वो इस प्रकार के आचरण पूर्वक विचरते हुए जघन्य से एक, दो या तीन दिन और उत्कृष्ट से पाँच महिने तक इस प्रतिमा का पालन करता है । वो पाँचवी (दिन में ब्रह्मचर्य नाम की उपासक प्रतिमा ।)

सूत्र - ४२

अब **छठ्ठी उपासक प्रतिमा** कहते हैं ।

वो सर्व धर्म रूचिवाला यावत् एक रात्रि की उपासक प्रतिमा का सम्यक् अनुपालन कर्ता होता है । वो स्नान न करनेवाला, दिन में ही खानेवाला, धोति की पाटली न बांधनेवाला, दिन और रात में पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता है । लेकिन वो प्रतिज्ञापूर्वक सचित्त आहार का परित्यागी नहीं होता। इस प्रकार के आचरण से विचरते हुए वो जघन्य से एक, दो या तीन दिन और उत्कृष्ट से छ मास तक सूत्रोक्त मार्ग के मुताबिक इस प्रतिमा का सम्यक् प्रकार से पालन करते हैं–यह छठ्ठी (दिन-रात ब्रह्मचर्य) उपासक प्रतिमा ।

सूत्र - ४३

अब **सातवीं उपासक प्रतिमा** कहते हैं –

वो सर्व धर्म रूचिवाला होता है । यावत् दिन-रात ब्रह्मचारी और सचित्त आहार परित्यागी होता है । लेकिन गृह आरम्भ के परित्यागी नहीं होता । इस प्रकार के आचरण से विचरते हुए वह जघन्य से एक, दो या तीन दिन से उत्कृष्ट सात महिने तक सूत्रोक्त मार्ग अनुसार इस प्रतिमा का पालन करते हैं । यह (सचित्त परित्याग नाम की) सातवीं उपासक प्रतिमा ।

सूत्र - ४४

अब **आठवीं उपासक प्रतिमा** कहते हैं ।

वो सर्व धर्म रूचिवाला होता है । यावत् दिन-रात ब्रह्मचर्य का पालन करता है । सचित्त आहार का और घर के सर्व आरम्भ कार्य का परित्यागी होता है । लेकिन अन्य सभी आरम्भ के परित्यागी नहीं होते । इस प्रकार के आचरणपूर्वक विचरते वह जघन्य से एक, दो, तीन यावत् आठ महिने तक सूत्रोक्त मार्ग अनुसार इस प्रतिमा का पालन करते हैं । यह (आरम्भ परित्याग नाम की) आठवी उपासक प्रतिमा ।

सूत्र - ४५

अब **नौवीं उपासक प्रतिमा** कहते हैं ।

वो सर्व धर्म रूचिवाले होते हैं । यावत् दिन-रात पूर्ण ब्रह्मचारी, सचित्ताहार और आरम्भ के परित्यागी होते हैं । दूसरे के द्वारा आरम्भ करवाने के परित्यागी होते हैं । लेकिन उद्दिष्ट भक्त यानि अपने निमित्त से बनाए हुए भोजन करने का परित्यागी नहीं होता । इस प्रकार आचरणपूर्वक विचरते वह जघन्य से एक, दो या तीन दिन से उत्कृष्ट नौ महिने तक सूत्रोक्त मार्ग अनुसार प्रतिमा पालता है, यह नौवीं (प्रेषपरित्याग नामक) उपासक प्रतिमा ।

सूत्र - ४६

अब **दशवीं उपासक प्रतिमा** कहते हैं–

वो सर्व धर्म रूचिवाला होता है । (इसके पहले बताए गए नौ उपासक प्रतिमा का धारक होता है ।) उद्दिष्ट भक्त-उसके निमित्त से बनाए भोजन-का परित्यागी होता है वो सिर पर मुंड़न करवाता है लेकिन चोटी रखता है ।

किसी के द्वारा एक या ज्यादा बार पूछने से उसे दो भाषा बोलना कल्पे । यदि वो जानता हो तो कहे कि ''मैं जानता हूँ'' यदि न जानता हो तो कहे कि ''मैं नहीं जानता'' इस प्रकार के आचरण पूर्वक विचरते यह जघन्य से एक, दो, तीन दिन, उत्कृष्ट से दश महिने तक सूत्रोक्त मार्ग अनुसार इस प्रतिमा का पालन करते हैं । यह (उद्दिष्ट भोजन त्याग नामक) दशवीं उपासक प्रतिमा ।

सूत्र - ४७

अब **ग्यारहवी उपासक प्रतिमा** कहते हैं ।

वो सर्व (साधु-श्रावक) धर्म की रूचिवाला होने के बावजूद उक्त सर्व प्रतिमा को पालन करते हुए उद्दिष्ट भोजन परित्यागी होता है । वो सिर पर मुंड़न करवाता है या लोच करता है। वो साधु आचार और पात्र-उपकरण ग्रहण करके श्रमण-निर्ग्रन्थ का वेश धारण करता है । उनके लिए प्ररूपित श्रमणधर्म को सम्यक् प्रकार से काया से स्पर्श करते और पालन करते हुए विचरता है । चार हाथ प्रमाण भूमि देखकर चलता है । (उस प्रकार से ईया समिति का पालन करते हुए) त्रस जानवर को देखकर उनकी रक्षा के लिए पाँव उठा लेता है, पाँव सिकुड़ लेता है । या टेढ़े पाँव रखकर चलता है । (उस प्रकार से जीव रक्षा करता है) जीव व्याप्त मार्ग छोड़कर मुमकिन हो तो दूसरे विद्यमान मार्ग पर चलता है । जयणापूर्वक चलता है लेकिन पूरी प्रकार जाँच किए बिना सीधी राह पर नहीं चलता, केवल ज्ञाति-वर्ग के साथ उसके प्रेम-बंधन का विच्छेद नहीं होता ।

इसलिए उसे ज्ञाति के लोगों में भिक्षावृत्ति के लिए जाना कल्पे । (मतलब की वो रिश्तेदार के वहाँ से आहार ला सकता है ।) स्वजन-रिश्तेदार के घर पहुँचे उससे पहले चावल बन गए हो और मुँग की दाल न हुई हो तो चावल लेना कल्पे लेकिन मुँग की दाल लेना न कल्पे । यदि पहले मुँग की दाल हुई हो और चावल न हुए हो तो मुँग की दाल लेना कल्पे लेकिन चावल लेना न कल्पे । यदि उनके पहुँचने से पहले दोनों तैयार हो तो दोनों लेना कल्पे । यदि उनके पहुँचने से पहले दोनों में से कुछ भी न हुआ हो तो दोनों में से कुछ भी लेना न कल्पे । यानि वो पहुँचे उससे पहले जो चीज तैयार हो वो लेना कल्पे और उनके जाने के बाद बनाई कोई चीज लेना न कल्पे ।

जब वो (श्रमणभूत) उपासक गृहपति के कुल (घर) में आहार ग्रहण करने की ईच्छा से प्रवेश करे तब उसे इस प्रकार से बोलना चाहिए–''प्रतिमाधारी श्रमणोपासक को भिक्षा दो ।'' इस प्रकार के आचरण पूर्वक विचरते उस उपासक को देखकर शायद कोई पूछे, ''हे आयुष्मान् ! तुम कौन हो ?'' वो बताओ । तब उसे पूछनेवाले को कहना चाहिए कि, ''मैं प्रतिमाधारी श्रमणोपासक हूँ ।''

इस प्रकार के आचरण पूर्वक विचरते वह जघन्य से एक, दो या तीन दिन से, उत्कृष्ट ११ महिने तक विचरण करे । यह ग्यारहवी (श्रमणभूत नामक) उपासक प्रतिमा ।

इस प्रकार वो स्थविर भगवंत ने निश्चय से ग्यारह उपासक प्रतिमा (श्रावक को करने की विशिष्ट ११ प्रतिज्ञा) बताई है । उस प्रकार मैं (तुम्हें) कहता हूँ ।

दशा-६-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

दशा-७-भिक्षु प्रतिमा

इस दशा का नाम भिक्षु-प्रतिमा है । जिस प्रकार इसके पूर्व की दशा में श्रावक-श्रमणोपासक की ११ प्रतिमा का निरूपण किया है वैसे यहाँ भिक्षु की १२ प्रतिमा बताई है । यहाँ भी 'प्रतिमा' शब्द का अर्थ विशिष्ट प्रतिज्ञा ऐसा ही समझना ।

सूत्र - ४८

हे आयुष्मान् ! वो निर्वाण प्राप्त भगवंत के स्वमुख से मैंने ऐसा सूना है । इस (जिन प्रवचन में) स्थविर भगवंत ने निश्चय से बारह भिक्षु प्रतिमा बताई है । उस स्थविर भगवंत ने निश्चय से बारह भिक्षु प्रतिमा कौन-सी बताई है ? उस स्थविर भगवंत ने निश्चय से कही बारह भिक्षु-प्रतिमा इस प्रकार है–एक मासिकी, द्विमासिकी, त्रिमासिकी, चतुर्मासिकी, पंचमासिकी, छ मासिकी, सात मासिकी, पहली सात रात्रि-दिन, दूसरी सात रात्रि-दिन, तीसरी सात रात्रि-दिन, अहोरात्रि की और एकरात्रि की ।

सूत्र - ४९

मासिकी भिक्षु प्रतिमा को धारण करनेवाले साधु काया को वोसिरा के तथा शरीर के ममत्व भाव के त्यागी होते हैं । देव-मानव या तिर्यंच सम्बन्धी जो कोई उपसर्ग आता है उसे वो सम्यक् प्रकार से सहता है । उपसर्ग करनेवाले को क्षमा करते हैं, अदीन भाव से सहते हैं, शारीरिक क्षमतापूर्वक उसका सामना करता है । मासिक भिक्षु प्रतिमाधारी साधु को एक दत्ति भोजन या पानी को दाता दे तो लेना कल्पे । यह दत्ति भी अज्ञात कुल से, अल्पमात्रा में दूसरों के लिए बनाए हुए अनेक द्विपद, चतुष्पद, श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और भिखारि आदि के भिक्षा लेकर चले जाने के बाद ग्रहण करना कल्पे । और फिर यह दत्ति जहाँ एक व्यक्ति भोजन कर रहा हो वहाँ से लेना कल्पे । लेकिन दो, तीन, चार, पाँच व्यक्ति साथ बैठकर भोजन कर रहे हो तो वहाँ से लेना नहीं कल्पता । गर्भिणी, छोटे बच्चेवाली या बालक को दूध पीला रही हो, उसके पास से आहार-पानी की दत्ति लेना कल्पता नहीं, जिसके दोनों पाँव ऊंबरे के बाहर या अंदर हो तो उस स्त्री के पास से दत्ति लेना न कल्पे परंतु एक पाँव अंदर और एक पाँव बाहर हो तो उसके हाथ से लेना कल्पता है । मगर यदि वो देना न चाहे तो उसके हाथ से लेना न कल्पे ।

मासिकी भिक्षु प्रतिमा धारण किए हुए साधु को आहार लाने के तीन समय बताये हैं–आदि, मध्य और अन्त, जो भिक्षु आदि में गोचरी जावे, वह मध्य या अन्त में न जावे, जो मध्य में गोचरी जावे वह आदि या अन्त में न जावे, जो अन्त में गोचरी जावे वो आदि या मध्य में न जावे ।

मासिक भिक्षु प्रतिमाधारी साधु को छह प्रकार से गोचरी बताई है । पेटा, अर्धपेटा, गौमूत्रिका, पतंग वीथिका, शम्बूकावर्ती, गत्वाप्रत्यागता । इन छह प्रकार की गोचरी में से कोई एक प्रकार की गोचरी का अभिग्रह लेकर प्रतिमाधारी साधु को भिक्षा लेना कल्पता है ।

जिस ग्राम यावत् मडंब में एकमासिकी भिक्षुप्रतिमा धारक साधु को यदि कोई जानता हो तो उसको वहाँ एक रात्रि रहना कल्पे, यदि कोई न जानता हो तो एक या दो रात्रि रहना कल्पे, परंतु यदि वह उससे ज्यादा निवास करे तो वह भिक्षु उतने दिनों के दीक्षापर्याय का छेद या परिहार तप का भागी होता है ।

मासिकी भिक्षु प्रतिमाधारक साधु को चार प्रकार की भाषा बोलना कल्पता है–याचनी, पृच्छनी, अनुज्ञापनी तथा पृष्ठव्याकरणी ।

मासिकी भिक्षुप्रतिमा प्रतिपन्न साधु को तीन प्रकार के उपाश्रयों की प्रतिलेखना करना, आज्ञा लेना अथवा वहाँ निवास करना कल्पे–उद्यानगृह, चारों ओर से ढ़का हुआ न हो ऐसा गृह, वृक्ष के नीचे रहा हुआ गृह । भिक्षु प्रतिमाधारक साधु को तीन प्रकार के संस्तारक की प्रतिलेखना, आज्ञा लेना एवं ग्रहण करना कल्पता है–पृथ्वी-शिला, काष्ठपाट, पूर्व से बिछा हुआ तृण ।

मासिकी भिक्षुप्रतिमा धारक साधु को उपाश्रय में कोई स्त्री-पुरुष आकर अनाचार का आचरण करता दिखाई दे तो उस उपाश्रय में आना या जाना न कल्पे, वहाँ कोई अग्नि प्रज्वलित हो जाए या अन्य कोई प्रज्वलित

करे तो वहाँ आना या जाना न कल्पे, कदाचित् कोई हाथ पकड़ के बाहर नीकालना चाहे तो भी उसका सहारा न नीकले, किन्तु यतनापूर्वक चलते हुए बाहर नीकले ।

मासिकी भिक्षुप्रतिमा धारक साधु के पाँव में काँटा, कंकर या काँच घूस जाए, आँख में मच्छर आदि सूक्ष्म जंतु, बीज, रज आदि गिरे तो उसको नीकालना अथवा शुद्धि करना न कल्पे, किन्तु यतनापूर्वक चलते रहना कल्पे।

मासिकी भिक्षुप्रतिमा धारी साधु को विचरण करते हुए जहाँ सूर्यास्त हो जाए वहीं ही रहना चाहिए । वहाँ जल हो या स्थल, दुर्गम मार्ग हो या निम्न मार्ग, पर्वत हो या विषम मार्ग, खड्डा हो या गुफा हो, रातभर वहीं ही रहना चाहिए, एक कदम भी आगे नहीं जा सकता । सुबह में प्रभात होने से सूर्य जाज्वल्यमान होने के बाद किसी भी दिशा में यतनापूर्वक गमन करना कल्पता है । मासिकी भिक्षुप्रतिमा धारक साधु को सचित्त पृथ्वी पर निद्रा लेना या लैटना न कल्पे, केवली भगवंत ने उसे कर्मबन्ध का कारण बताया है । वह साधु उस प्रकार निद्रा लेवे या लैटे तब अपने हाथ से भूमि का स्पर्श करता है तब जीवहिंसा होती है इसलिए उसे सूत्रोक्त विधि से निर्दोष स्थान में रहना या विचरण करना चाहिए ।

यदि वह साधु को मल-मूत्र की शंका होवे तब उसे रोकना नहीं चाहिए, किन्तु पहले प्रतिलेखित भूमि पर त्याग करना चाहिए, वापस उसी उपाश्रय में आकर सूत्रोक्त विधि से निर्दोष स्थान में रहना चाहिए ।

मासिकी भिक्षु प्रतिमाधारक साधु को सचित्त रजवाले शरीर के साथ गृहस्थ या गृहसमुदाय में भोजन-पान के लिए जाना या वहाँ से नीकलना न कल्पे । यदि उसे ज्ञात हो जाए कि शरीर पर सचित्त रज पसीने से अचित्त हो गई है, तब उसे वहाँ प्रवेश या निर्गमन करना कल्पे । उसको अचित्त ऐसे ठंड़े या गर्म पानी से हाथ, पाँव, दाँत, आँख या मुख एक बार या बारबार धोना न कल्पे, सीर्फ मल-मूत्रादि से लिप्त शरीर या भोजन-पान से लिप्त हाथ या मुख धोना कल्पता है ।

मासिकी भिक्षुप्रतिमा धारी साधु के सामने अश्व, बैल, हाथी, भैंस, सिंह, वाघ, भेड़ीया, रींछ, चित्ता, तेंदुक, पराशर, कुत्ता, बिल्ली, साप, ससला, शियाल, भूंड़ आदि हिंसक प्राणी आ जाए तब भयभीत होकर एक कदम भी पीछे खीसकना न कल्पे । इसी प्रकार ठंड़ लगे तब धूप में या गर्मी लगे तब छाँव में जाना न कल्पे, किन्तु जहाँ जैसी ठंड़ या गर्मी हो वह उसे सहन करना चाहिए ।

मासिकी भिक्षुप्रतिमा को वह साधु सूत्र, आचार या मार्ग में जिस प्रकार कही हो उसी प्रकार से सम्यक्तया स्पर्श करना, पालन करना, शुद्धिपूर्वक कीर्तन और आराधना करना चाहिए, तभी वह साधु जिनाज्ञापालक होता है

सूत्र - ५०

द्विमासिकी भिक्षुप्रतिमा धारक साधु हंमेशा काया के ममत्व का त्याग किया हुआ, इत्यादि सर्व कथन प्रथम भिक्षुप्रतिमा समान जानना । विशेष यह कि भोजन-पानी की दो दत्ति ग्रहण करना कल्पे तथा दूसरी प्रतिमा का पालन दो मास तक करे, इसी प्रकार से भोजन-पानी की एक एक दत्ति और एक-एक मास की प्रतिमा का पालन सात दत्ति पर्यन्त समझ लेना । अर्थात् तीसरी प्रतिमा-तीन दत्ति-तीन मास इत्यादि सात पर्यन्त जानना ।

सूत्र - ५१

अब आठवीं भिक्षुप्रतिमा बताते हैं, प्रथम सात रात्रिदिन के आठवीं भिक्षुप्रतिमा धारक साधु सर्वदा काया के ममत्व रहित–यावत् उपसर्ग आदि को सहन करे वह सब प्रथम प्रतिमा समान जानना । उस साधु को निर्जल चोथ भक्त के बाद अन्न-पान लेना कल्पे, गाँव यावत् राजधानी के बाहर उत्तासन, पार्श्वासन या निषद्यासन से कायोत्सर्ग करे, देव-मनुज या तिर्यंच सम्बन्धी जो कोई उपसर्ग उत्पन्न होवे तो उन उपसर्ग से उन साधु को ध्यान से चलित या पतित होना न कल्पे । यदि मलमूत्र की बाधा होवे तो पूर्व प्रतिलेखित स्थान में जा कर त्याग करे किन्तु रोके नहीं, फिर वापस विधिपूर्वक आकर अपने स्थान में कायोत्सर्ग में स्थिर रहे । इस प्रकार वह साधु प्रथमा एक सप्ताहरूप आठवीं प्रतिमा का सूत्रानुसार पालन करता यावत् जिनाज्ञाधारी होता है ।

इसी प्रकार नववीं-दूसरी एक सप्ताह की प्रतिमा होती है । विशेष यही कि इस प्रतिमाधारी साधु को दंड़ासन, लंगड़ासन या उत्कटुकासन में स्थित रहना चाहिए । दशवीं-तीसरी एक सप्ताह की प्रतिमा के आराधन काल में उसे गोदोहिकासन, वीरासन या आम्रकुब्जासन में स्थित रहना चाहिए ।

सूत्र - ५२

इसी प्रकार ग्यारहवीं-एक अहोरात्र की भिक्षुप्रतिमा के सम्बन्ध में जानना । विशेष यह कि निर्जल षष्ठभक्त करके अन्न-पान ग्रहण करना, गाँव यावत् राजधानी के बाहर दोनों पाँव सकुड़कर और दोनों हाथ घुटने पर्यन्त लम्बे रखकर कायोत्सर्ग करना । शेष पूर्ववत् यावत् जिनाज्ञानुसार पालन करनेवाला होता है ।

अब बारहवीं भिक्षुप्रतिमा बताते हैं–एक रात्रि की बारहवीं भिक्षुप्रतिमा धारक साधु काया के ममत्व रहित इत्यादि सब कथन पूर्ववत् जानना । विशेष यह कि निर्जल अष्टम भक्त करे, उसके बाद अन्न-पान ग्रहण करे । गाँव यावत् राजधानी के बाहर जाकर शरीर को थोड़ा आगे झुकाकर एक पुद्गल पर दृष्टि रख के अनिमेष नेत्रों से निश्चल अंगयुक्त सर्व इन्द्रियों का गोपन करके दोनों पाँव सकुड़कर, दोनों हाथ घूँटने तक लटकते रखे हुए कायोत्सर्ग करे, देव-मनुज या तिर्यंच के उपसर्ग सहे, किन्तु इसे चलित या पतित होना न कल्पे । मलमूत्र की बाधा में पूर्वोक्त विधि का पालन करके कायोत्सर्ग में स्थिर हो जाए ।

एक रात्रि की भिक्षुप्रतिमा का सम्यक् पालन न करनेवाले साधु के लिए तीन स्थान अहितकर, अशुभ, असामर्थ्यकर, अकल्याणकर, एवं दुःखद भावियुक्त होता है; उन्माद की प्राप्ति, लम्बे समय के लिए रोग की प्राप्ति, केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट होना । तीन स्थान हितकर, शुभ, सामर्थ्यकर, कल्याणकर एवं सुखद भावियुक्त होते हैं–अवधि, मनःपर्यव एवं केवलज्ञान की उत्पत्ति । इस प्रकार यह एक रात्रि की–बारहवीं भिक्षुप्रतिमा को सूत्र-कल्प-मार्ग तथा यथार्थरूप से सम्यक् प्रकार से स्पर्श, पालन, शोधन, पूरण, कीर्तन तथा आराधन करनेवाले जिनाज्ञा के आराधक होते हैं ।

इन बारह भिक्षुप्रतिमाओं को निश्चय से स्थविर भगवंतो ने बताई है ।

दशा-७-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

दशा-८-पर्युषणा

सूत्र - ५३

उस काल, उस समय में श्रमण भगवान महावीर की पाँच घटनाएं उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में हुई । उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्र में–देवलोक से च्यवन, गर्भसंक्रमण, जन्म, दीक्षा तथा अनुत्तर अनंत अविनाशी निरावरण केवल ज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति । भगवंत स्वाति नक्षत्र में परिनिर्वाण प्राप्त हुए । यावत् इस पर्युषणकल्प का पुनः पुनः उपदेश किया गया है। (यहाँ ''यावत्'' शब्द से च्यवन से निर्वाण तक पूरा महावीर चरित्र समझ लेना चाहिए ।)

दशा-८-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

दशा-९-मोहनीय स्थान

आठ कर्मों में मोहनीय कर्म प्रबल है । उसकी स्थिति भी सबसे लम्बी है । इसके संपूर्ण क्षय के साथ ही क्रम से शेष कर्मप्रकृति का क्षय होता है । इस मोहनीय कर्म के बन्ध के ३० स्थान (कारण) यहाँ प्ररूपित हैं –

सूत्र - ५४

उस काल उस समय में चम्पानगरी थी । पूर्णभद्र चैत्य था । कोणिक राजा तथा धारिणी राणी थे । श्रमण भगवान महावीर वहाँ पधारे । पर्षदा नीकली । भगवंतने देशना दी । धर्म श्रवण करके पर्षदा वापिस लौटी । बहुत साधु-साध्वी को भगवंत ने कहा–आर्यो ! मोहनीय स्थान ३० हैं । जो स्त्री या पुरुष इस स्थान का बारबार सेवन करते हैं, वे महामोहनीय कर्म का बन्ध करते हैं ।

सूत्र – ५५-५७

जो कोई त्रस प्राणी को जल में डूबाकर मार डालते हैं, वे महामोहनीय कर्म का बन्ध करते हैं । प्राणी के मुख-नाक आदि श्वास लेने के द्वारों को हाथ से अवरुद्ध करके । अग्नि की धूम्र से किसी गृह में घीरकर मारे तो महामोहनीय कर्मबन्ध करे ।

सूत्र – ५८-६०

जो कोई प्राणी को मस्तक पर शस्त्रप्रहार से भेदन करे, अशुभ परिणाम से गीला चर्म बांधकर मारे, छलकपट से किसी प्राणी को भाले या डंडे से मार कर हँसता है, तो महामोहनीय कर्मबन्ध होता है ।

सूत्र – ६१-६३

जो गूढ़ आचरण से अपने मायाचार को छूपाए, असत्य बोले, सूत्रों के यथार्थ को छूपाए, निर्दोष व्यक्ति पर मिथ्या आक्षेप करे या अपने दुष्कर्मों को दूसरे पर आरोपण करे, सभा मध्य में जान-बूझकर मिश्र भाषा बोले, कलहशील हो–वह महामोहनीय कर्म बांधता है ।

सूत्र – ६४-६५

जो अनायक मंत्री-राजा को राज्य से बाहर भेजकर राज्यलक्ष्मी का उपभोग करे, राणी का शीलखंड़न करे, विरोधकर्ता सामंतो की भोग्यवस्तु का विनाश करे तो वह महामोहनीय कर्म बांधता है ।

सूत्र – ६६-६८

जो बालब्रह्मचारी न होते हुए अपने को बालब्रह्मचारी कहे, स्त्री आदि के भोगो में आसक्त रहे, वह गायों के बीच गद्धे की प्रकार बेसूरा बकवास करता है । आत्मा का अहित करनेवाला वह मूर्ख मायामृषावाद और स्त्री आसक्ति से महामोहनीय कर्म बांधता है ।

सूत्र – ६९-७१

जो जिसके आश्रय से आजीविका करता है, जिसकी सेवा से समृद्ध हुआ है, वह उसीके धन में आसक्त होकर, उसका ही सर्वस्व हरण करे, निर्धन ऐसा कोई जिस व्यक्ति या ग्रामवासी के आश्रय से सर्व साधनसम्पन्न हो जाए, फिर इर्ष्या या संक्लिष्टचित्त होकर आश्रयदाता के लाभ में यदि अन्तरायभूत हो, तो महामोहनीय कर्म बांधे

सूत्र - ७२

जिस प्रकार सापण अपने बच्चे को खा जाती है, उसी प्रकार कोई स्त्री अपने पति को, मंत्री, राजा को, सेना सेनापति को या शिष्य शिक्षक को मार ड़ाले तो वे महामोहनीय कर्म बांधते हैं ।

सूत्र – ७३-७४

जो राष्ट्र नायक को, नेता को, लोकप्रिय श्रेष्ठी को या समुद्र में द्वीप सदृश अनाथ जन के रक्षक को मार ड़ाले तो वह महामोहनीय कर्म बांधता है ।

सूत्र – ७५-७७

जो पापविरत मुमुक्षु, संयत तपस्वी को धर्म से भ्रष्ट करे, अज्ञानी ऐसा वह जिनेश्वर के अवर्णवाद करे, अनेक जीवों को न्यायमार्ग से भ्रष्ट करे, न्यायमार्ग की द्वेषपूर्वक निन्दा करे तो वह महामोहनीय कर्म बांधता है ।

सूत्र – ७८-७९

जिस आचार्य या उपाध्याय के पास ज्ञान एवं आचार की शिक्षा ली हो–उसी की अवहेलना करे, अहंकारी ऐसा वह उन आचार्य-उपाध्याय की सम्यक् सेवा न करे, आदर-सत्कार न करे, तब महामोहनीय कर्म बांधता है ।

सूत्र – ८०-८३

जो बहुश्रुत न होते हुए भी अपने को बहुश्रुत, स्वाध्यायी, शास्त्रज्ञ कहे, तपस्वी न होते हुए भी अपने को तपस्वी बताए, वह सर्व जनों में सबसे बड़ा चोर है । ''शक्तिमान होते हुए भी ग्लान मुनि की सेवा न करना'' – ऐसा कहे, वह महामूर्ख, मायावी और मिथ्यात्वी-कलुषित चित्त होकर अपने आत्मा का अहित करता है । यह सब महामोहनीय कर्म बांधते हैं ।

सूत्र - ८४

चतुर्विध श्रीसंघ में भेद उत्पन्न करने के लिए जो कलह के अनेक प्रसंग उपस्थित करता है, वह महा-मोहनीय कर्म बांधता है ।

सूत्र – ८५-८६

जो (वशीकरण आदि) अधार्मिक योग का सेवन, स्वसन्मान, प्रसिद्धि एवं प्रिय व्यक्ति को खुश करने के लिए बारबार विधिपूर्वक प्रयोग करे, जीवहिंसादि करके वशीकरण प्रयोग करे, प्राप्त भोगों से अतृप्त व्यक्ति, मानुषिक और दैवी भोगों की बारबार अभिलाषा करे वह महामोहनीय कर्म बांधता है ।

सूत्र – ८७-८८

जो ऋद्धि, द्युति, यश, वर्ण एवं बल-वीर्य युक्त देवताओं का अवर्णवाद करता है, जो अज्ञानी पूजा की अभिलाषा से देव–यक्ष और असूरों को न देखते हुए भी मैं इन सबको देखता हूँ ऐसा कहे–वह महामोहनीय कर्म बांधता है ।

सूत्र - ८९

ये तीस स्थान सर्वोत्कृष्ट अशुभ फल देनेवाले बताये हैं । चित्त को मलिन करते हैं, इसलिए भिक्षु इसका आचरण न करे और आत्मगवेषी होकर विचरे ।

सूत्र – ९०-९२

जो भिक्षु यह जानकर पूर्वकृत् कृत्य-अकृत्य का परित्याग करे, उन-उन संयम स्थानों का सेवन करे जिससे वह आचारवान बने, पंचाचार पालन से सुरक्षित रहे, अनुत्तरधर्म में स्थिर होकर अपने सर्व दोषों का परित्याग करे, जो धर्मार्थी, भिक्षु शुद्धात्मा होकर अपने कर्तव्यों का ज्ञाता होता है, उनकी इस लोक में कीर्ति होती है और परलोक में सुगति होती है ।

सूत्र - ९३

दृढ़, पराक्रमी, शूरवीर भिक्षु सर्व मोहस्थानो का ज्ञाता होकर उनसे मुक्त होता है, जन्म-मरण का अतिक्रमण करता है । ऐसा मैं कहता हूँ ।

दशा-९-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

दशा-१०-आयतिस्थान

सूत्र - ९४

उस काल और उस समय में राजगृह नगर था । गुणशील चैत्य था । श्रेणिक राजा था । चेल्लणा रानी थी । (सब वर्णन औपपातिक सूत्रवत् जानना)

सूत्र - ९५

तब उस राजा श्रेणिक-बिंबिसारने एक दिन स्नान किया, बलिकर्म किया, विघ्नशमन के लिए ललाट पर तिलक किया, दुःस्वप्न दोष निवारणार्थ प्रायश्चित्तादि विधान किये, गले में माला पहनी, मणि-रत्नजड़ित सुवर्ण के आभूषण धारण किये, हार-अर्धहार-त्रिसरोहार पहने, कटिसूत्र पहना, सुशोभित हुआ । आभूषण व मुद्रिका पहनी, यावत् कल्पवृक्ष के सदृश वह नरेन्द्र श्रेणिक अलंकृत और विभूषित हुआ । यावत् चन्द्र के समान प्रियदर्शी नरपति श्रेणिक बाह्य उपस्थानशाला के सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठा । अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा –

हे देवानुप्रियो ! राजगृह नगरी के बाहर जो बगीचे, उद्यान, शिल्पशाला, धर्मशाला, देवकुल, सभा, प्याऊ, दुकान, मंड़ी, भोजनशाला, व्यापार केन्द्र, शिल्प केन्द्र, वनविभाग इत्यादि सभी स्थानों में जाकर मेरे सेवकों को निवेदन करो–श्रेणिक बिंबिसारकी यह आज्ञा है कि जब आदिकर तीर्थंकर यावत् सिद्धिगति के ईच्छुक श्रमण भगवान महावीर विचरण करते हुए–संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए यहाँ पधारे, तब भगवान महावीर को उनकी साधना के अनुकूल स्थान दिखाना यावत् रहने की अनुज्ञा प्रदान करना ।

तब वह प्रमुख राज्याधिकारी, श्रेणिकराजा के इस कथन से हर्षित हृदय होकर, यावत् श्रेणिक राजा की आज्ञा को विनयपूर्वक स्वीकार करके राजमहल से नीकले, नगर के बाहर बगीचा, यावत् सभी स्थानों के सेवकों को राजा श्रेणिक की आज्ञा से अवगत कराया और फिर वापस आ गए ।

सूत्र - ९६

उस काल उस समय में धर्म के आदिकर तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर विचरण करते हुए, यावत् गुणशील चैत्य में पधारे । उस समय राजगृह नगर के तीन रास्ते, चार रस्ते, चौक में होकर, यावत् पर्षदा नीकली, यावत् पर्युपासना करने लगी । श्रेणिक राजा के सेवक अधिकारी श्रमण भगवान महावीर के पास आए, प्रदक्षिणा की, वन्दन-नमस्कार किया, यावत् एक दूसरे से कहने लगे कि जिनका नाम व गोत्र सूनकर श्रेणिक राजा हर्षित-संतुष्ट यावत् प्रसन्न हो जाता है, वे श्रमण भगवान महावीर विचरण करते हुए, यावत् यहाँ पधारे हैं । इसी राजगृही नगरी के बाहर गुणशील चैत्य में तप और संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए रहे हैं ।

हे देवानुप्रियो ! श्रेणिक राजा को इस वृत्तान्त निवेदन करो । परस्पर एकत्रित होकर वे राजगृही नगरीमें यावत् श्रेणिक राजा के पास आकर बोले–हे स्वामी ! जिनके दर्शन की आप अभिलाषा करते हैं वे श्रमण भगवान महावीर गुणशीलचैत्यमें–यावत् बिराजित हैं । यह संवाद आप को प्रिय हो, इसलिए हम आपको निवेदित करते हैं।

सूत्र - ९७

उस समय राजा श्रेणिक इस संवाद को सुनकर-अवधारित कर हृदय से हर्षित एवं संतुष्ट हुआ यावत् सिंहासन से उठकर सात-आठ कदम चलके वन्दन-नमस्कार किए । उन सेवकों को सत्कार-सन्मान करके प्रीति पूर्वक आजीविका योग्य विपुल दान देकर विदा किए । नगर रक्षकों को बुलाकर कहा कि आप शीघ्र ही राजगृह नगर को बाहर से और अंदर से परिमार्जित करो–जल से सिंचित करो ।

सूत्र - ९८

उसके बाद श्रेणिक राजाने सेनापति को बुलाकर कहा–शीघ्र ही रथ, हाथी, घोड़ा एवं योद्धायुक्त चतुरंगिणी सेना को तैयार करो यावत् मेरी यह आज्ञापूर्वक कार्य हो जाने का निवेदन करो । उसके बाद राजा श्रेणिक ने यानशाला अधिकारी को बुलाकर श्रेष्ठ धार्मिक रथ सुसज्ज करने की आज्ञा दी । यानशाला अधिकारी भी हर्षित-

संतुष्ट होकर यानशाला में गए, रथ को प्रमार्जित किया, शोभायमान किया, उसके बाद वाहनशाला में आकर बैलों को नीकाला, उनकी पीठ पसवारकर बाहर लाए, उन बैलों के पर झुल वगैरह रखकर शोभायमान किए, अनेक अलंकार पहनाए, रथ में जोतकर रथ को बाहर नीकाला, सारथि भी हाथ में सुन्दर चाबुक लेकर बैठा । श्रेणिक राजा के पास आकर श्रेष्ठ धार्मिक रथ सुसज्जित हो जाने का निवेदन किया । और बैठने के लिए विज्ञप्ति की ।

सूत्र - ९९

श्रेणिक राजा बिंबिसार यानचालक से पूर्वोक्त बात सूनकर हर्षित तुष्टित हुआ । स्नानगृह में प्रविष्ट हुआ । यावत् कल्पवृक्ष समान अलंकृत एवं विभूषित होकर वह श्रेणिक नरेन्द्र, यावत् स्नानगृह से नीकला । चेल्लणादेवी के पास आया और चेल्लणा देवी को कहा–हे देवानुप्रिये ! श्रमण भगवान महावीर यावत् गुणशील चैत्य में बिराजमान हैं । वहाँ जाकर उनको वन्दन, नमस्कार, सत्कार, सन्मान करने चले । वे कल्याणरूप, मंगलभूत, देवाधिदेव, ज्ञानी की पर्युपासना करेंगे, उनकी पर्युपासना यह और आगामी भवों के हित के लिए, सुख के लिए, कल्याण के लिए, मोक्ष के लिए और भवोभव के सुख के लिए होगी ।

सूत्र - १००

राजा श्रेणिक से यह कथन सूनकर चेल्लणादेवी हर्षित हुई, संतुष्ट हुई यावत् स्नानगृह में जाकर स्नान कर के बलिकर्म किया, कौतुक-मंगल किया, अपने सुकुमार पैरों में झांझर, कमर में मणिजड़ित कन्दोरा, गले में एकावली हार, हाथ में कड़े और कंकण, अंगुली में मुद्रिका, कंठ से उरोज तक मरकतमणि का त्रिसराहार धारण किया । कान में पहने हुए कुंडल से उनका मुख शोभायमान था । श्रेष्ठ गहने और रत्नालंकारों से वह विभूषित थी । सर्वश्रेष्ठ रेशम का सुंदर और सुकोमल रमणीय उत्तरीय धारण किया था । सर्वऋतु में विकसीत ऐसे सुन्दर सुगन्धी फूलों की माला पहने हुए, काला अगरु इत्यादि धूप से सुगंधित वह लक्ष्मी सी शोभायुक्त वेशभूषावाली चेल्लणा अनेक कुब्ज यावत् चिलाती दासीओं के वृन्द से घिरी हुई–उपस्थापन शाला में राजा श्रेणिक के पास आई ।

सूत्र - १०१

तब श्रेणिक राजा चेल्लणादेवी के साथ श्रेष्ठ धार्मिक रथ में आरूढ़ हुआ यावत् भगवान महावीर के पास आए यावत् भगवन् को वन्दन नमस्कार करके पर्युपासना करने लगे । उस वक्त भगवान महावीर ने ऋषि, यति, मुनि, मनुष्य और देवों की पर्षदा में तथा श्रेणिक राजा बिंबिसार और रानी चेल्लणा यावत् पर्षदा को धर्मदेशना सुनाई । पर्षदा और राजा श्रेणिक वापिस लौटे ।

सूत्र - १०२

उस वक्त राजा श्रेणिक एवं चेल्लणा देवी को देखकर कितनेक निर्ग्रन्थ एवं निर्ग्रन्थी के मन में इस प्रकार का अध्यवसाय यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ कि अरे ! यह श्रेणिक राजा महती ऋद्धिवाला यावत् परमसुखी है, वह स्नान, बलिकर्म, तिलक, मांगलिक, प्रायश्चित्त करके सर्वालंकार से विभूषित होकर चेल्लणा देवी के साथ मनुष्य सम्बन्धी कामभोग भुगत रहा है । हमने देवलोक के देव तो नहीं देखे, हमारे सामने तो यही साक्षात देव हैं । यदि इस सुचरित तप, नियम, ब्रह्मचर्य का अगर कोई कल्याणकारी विशिष्ट फल हो तो हम भी भावि में इस प्रकार के औदारिक मानुषिक भोग का सेवन करे । कितनोने सोचा कि अहो ! यह चेल्लणा देवी महती ऋद्धिवाली यावत् परम सुखी है–यावत् सर्व अलंकारों से विभूषित होकर श्रेणिक राजा के साथ औदारिक मानुषिक कामभोग सेवन करती हुई विचरती है । हमने देवलोक की देवी को तो नहीं देखा, किन्तु यह साक्षात देवी हैं । यदि हमारे सुचरित तप-नियम और ब्रह्मचर्य का कोई कल्याणकारी फल हो तो हम भी आगामी भव में ऐसे ही भोगों का सेवन करे ।

सूत्र - १०३

श्रमण भगवान महावीर ने बहुत से साधु-साध्वीओं को कहा–श्रेणिक राजा और चेल्लणा रानी को देखकर क्या–यावत् इस प्रकार के अध्यवसाय आपको उत्पन्न हुए यावत् क्या यह बात सही है ?

हे आयुष्मान् श्रमणों ! मैंने धर्म का निरूपण किया है–यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है, श्रेष्ठ है, सिद्धि-मुक्ति, निर्याण और निर्वाण का यही मार्ग है, यही सत्य है, असंदिग्ध है, सर्व दुःखों से मुक्ति दिलाने का मार्ग है । इस सर्वज्ञ प्रणित धर्म के आराधक-सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होकर निर्वाण प्राप्त करके सब दुःखों का अंत करते हैं ।

जो कोई निर्ग्रन्थ केवलि प्ररूपित धर्म की आराधना के लिए उपस्थित होकर शीत-गर्मी आदि सब प्रकार के परिषह सहन करते हुए यदि कामवासना का प्रबल उदय होवे तो उद्दिप्त कामवासना के शमन का प्रयत्न करे । उस समय यदि कोई विशुद्ध जाति, कुलयुक्त किसी उग्रवंशीय या भोगवंशीय राजकुमार को आते देखे, छत्र, चामर, दास, दासी, नौकर आदि के वृन्द से वह राजकुमार परिवेष्टित हो, उसके आगे आगे उत्तम अश्व, दोनों तरफ हाथी, पीछे पीछे सुसज्जित रथ चल रहा हो ।

कोई सेवक छत्र धरे हुए, कोई झारी लिए हुए, कोई विंझणा तो कोई चामर लिए हुए हो, इस प्रकार वह राजकुमार बारबार उनके प्रासाद में आता-जाता हो, देदीप्यमान कांतिवाला वह राजकुमार स्नान यावत् सर्व अलंकारों से विभूषित होकर पूर्ण रात्रि दीपज्योति से झगझगायमान विशाल कुटागार शाला के सर्वोच्च सिंहासन पर आरूढ़ हुआ हो यावत् स्त्रीवृन्द से घिरा हुआ, कुशल पुरुषों के नृत्य देखता हुआ, विविध वाजिंत्र सूनता हुआ, मानुषिक कामभोगों का सेवन करके विचरता हो, कोई एक सेवक को बुलाए तो चार, पाँच सेवक उपस्थित हो जाते हो, उनकी सेवा के लिए तत्पर हो ।

यह सब देखकर यदि कोई निर्ग्रन्थ ऐसा निदान करे कि मेरे तप, नियम, ब्रह्मचर्य का अगर कोई फल हो तो मैं भी उस राजकुमार की प्रकार मानुषिक भोगों का सेवन करूँ । हे आयुष्मान श्रमणों ! अगर वह निर्ग्रन्थ निदान कर के उस निदानशल्य की आलोचना प्रतिक्रमण किए बिना मरकर देवलोक में महती ऋद्धिवाला देव भी हो जाए, देवलोक से च्यवन कर के शुद्ध जातिवंश के उग्र या भोगकुलमें पुत्ररूप से जन्म भी ले, सुकुमाल हाथ-पाँव यावत् सुन्दर रूपवाला भी हो जाए, यावत् यौवन वय में पूर्व वर्णित कामभोगों की प्राप्ति कर ले–यह सब हो सकता है ।

किन्तु–जब उसको कोई केवलि प्ररूपित धर्म का उपदेश देता है, तब वह उपदेश को प्राप्त करता है, लेकिन श्रद्धापूर्वक श्रवण नहीं करता, क्योंकि वह धर्मश्रवण के लिए अयोग्य है । वह अनंत ईच्छावाला, महारंभी, महापरिग्रही, अधार्मिक यावत् दक्षिण दिशावर्ती नरक में नैरायिक होता है और भविष्य में वह दुर्लभबोधि होता है ।

–हे आयुष्मान् श्रमणों ! यह पूर्वोक्त निदानशल्य का ही विपाक है । इसीलिए वह धर्म श्रवण नहीं करता । (यह हुआ पहला 'निदान')

सूत्र - १०४

हे आयुष्मती श्रमणीयाँ ! मैंने धर्म का प्रतिपादन किया है–जैसे कि यही निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है । यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है । जो कोई निर्ग्रन्थी धर्मशिक्षा के लिए उपस्थित होकर, परिषह सहती हुई, यदि उसे कामवासना का उदय हो तो उसके शमन का प्रयत्न करे । यदि उस समय वह साध्वी किसी स्त्री को देखे, जो अपने पति कि एकमात्र प्राणप्रिया हो, वस्त्र एवं अलंकार पहने हुए हो । पति के द्वारा वस्त्रों की पेटी या रत्नकरंड़क के समान संरक्षणी-संग्रहणीय हो । अपने प्रासाद में आती-जाती हो इत्यादि वर्णन पूर्ववत् जानना । उसे देखकर अगर वह निर्ग्रन्थी ऐसा निदान करे कि यदि मेरे सुचरित तप, नियम, ब्रह्मचर्य का कोई फल हो तो मैं पूर्व वर्णित स्त्री के समान मानुषिक कामभोगों का सेवन करके मेरा जीवन व्यतीत करूँ ।

यदि वह निर्ग्रन्थी अपने इस निदान की आलोचना प्रतिक्रमण किए बिना काल करे तो पूर्व कथनानुसार देवलोक में जाकर, यावत् पूर्व वर्णित स्त्री के समान कामभोगों का सेवन करे, ऐसा हो भी सकता है । उनको केवलि प्ररूपित धर्मश्रवण प्राप्त भी हो सकता है । किन्तु वह श्रद्धापूर्वक सुन नहीं सकती क्योंकि वह धर्मश्रवण के लिए अयोग्य है । वह उत्कृष्ट ईच्छावाली, महा आरंभी यावत् दक्षिण दिशा के नरक में नैरयिक के रूप में उत्पन्न होती है यावत् भविष्य में बोधि दुर्लभ होती है । यहीं है उस निदान शल्य का कर्मविपाक, जिससे वह केवलि प्ररूपित धर्मश्रवण के लिए अयोग्य हो जाती है । (यह हुआ दूसरा 'निदान')

सूत्र - १०५

हे आयुष्मान् श्रमणों ! मैंने धर्म का निरूपण किया है । यहीं निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है यावत् सब दुःखों का अन्त करता है । जो कोई निर्ग्रन्थ केवलि प्ररूपित धर्म की आराधना के लिए तत्पर हुआ हो, परिषहों को सहता हो, यदि उसे कामवासना का उदय हो जाए तो उसके शमन का प्रयत्न करे इत्यादि पूर्ववत् ।

यदि वह किसी स्त्री को देखता है, जो अपने पति की एकमात्र प्राणप्रिया है यावत् सूत्र-१०४ के समान सब कथन जानना । यदि निर्ग्रन्थ उस स्त्री को देखकर निदान करे कि ''पुरुष का जीवन दुःखमय है'' जो ये विशुद्ध जाति-कुलयुक्त उग्रवंशी या भोगवंशी पुरुष है, वह किसी भी युद्ध में जाते हैं, शस्त्र प्रहार से व्यथित होते हैं । यों पुरुष का जीवन दुःखमय है और स्त्री का जीवन सुखमय है । अगर मेरे तप-नियम-ब्रह्मचर्य का कोई फल हो तो में भविष्य में स्त्रीरूप में उत्पन्न होकर भोगों का सेवन करनेवाला बनूँ ।

हे आयुष्मान् श्रमणों ! वह निर्ग्रन्थ निदान करके उसकी आलोचना-प्रतिक्रमण किए बिना काल करे तो वह महती ऋद्धिवाला देव हो सकता है, बाद में पूर्वोक्त कथन समान स्त्रीरूप में उत्पन्न भी होता है । वो स्त्री को केवलि प्ररूपित धर्मश्रवण भी प्राप्त होता है । लेकिन श्रद्धापूर्वक धर्मश्रवण करती नहीं है क्योंकि वह धर्मश्रवण के लिए अयोग्य है । वह उत्कट ईच्छावाली यावत् दक्षिणदिशावर्ती नरकमें उत्पन्न होती है । भविष्य में बोधि दुर्लभ होती है।

हे आयुष्मान् श्रमणों ! यह उस पापरूप निदान का फल है, जिससे वह धर्मश्रवण के लिए अयोग्य हो जाता है । (यह तीसरा 'निदान')

सूत्र - १०६

हे आयुष्मान् श्रमणों ! मैंने धर्म का प्रतिपादन किया है । यही निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है । यदि कोई निर्ग्रन्थी केवली प्रज्ञप्त धर्म के लिए तत्पर होती है, परिषह सहन करती है, उसे कदाचित् कामवासना का प्रबल उदय हो जाए तो वह तप संयम की उग्र साधना से उसका शमन करे । यदि उस समय (पूर्व वर्णित) उग्रवंशी या भोगवंशी पुरुष को देखे यावत् वह निदान करे कि स्त्री का जीवन दुःखमय है, क्योंकि गाँव यावत् सन्निवेश में अकेली स्त्री जा नहीं सकती । जिस प्रकार आम, बीजोरु, अम्बाड़ग इत्यादि स्वादिष्ट फल की पेशी हो, गन्ने का टुकड़ा या शाल्मली फली हो, तो अनेक मनुष्य के लिए वह आस्वादनीय यावत् अभिलषित होता है, उसी प्रकार स्त्री का शरीर भी अनेक मनुष्यों के लिए आस्वादनीय यावत् अभिलषित होता है । इसीलिए स्त्री का जीवन दुःखमय और पुरुष का जीवन सुखमय होता है ।

हे आयुष्मान् श्रमणों ! यदि कोई निर्ग्रन्थी पुरुष होने के लिए निदान करे, उसकी आलोचना प्रतिक्रमण किए बिना काल करे तो पूर्ववर्णन अनुसार देव बनकर, यावत् पुरुष बन भी सकती है । उसे धर्मश्रवण प्राप्त भी होता है, लेकिन सूनने की अभिलाषा नहीं होती यावत् वह दक्षिण दिशावर्ती नरक में उत्पन्न होता है ।

यही है उस निदान का फल, जिससे धर्मश्रवण नहीं हो सकता (यह हुआ चौथा 'निदान')

सूत्र - १०७

हे आयुष्मान् श्रमणों ! मैंने धर्म बताया है । यहीं निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है यावत् (प्रथम ''निदान'' समान जान लेना ।) कोई निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी धर्म शिक्षा के लिए तत्पर होकर विचरण करते हो, क्षुधादि परिषह सहते हो, फिर भी उसे कामवासना का प्रबल उदय हो जाए, तब उसके शमन के लिए तप-संयम की उग्र साधना से प्रयत्न करे । उस समय मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों से विरती हो जाए, जैसे कि मनुष्य सम्बन्धी कामभोग अध्रुव है, अनित्य है, अशाश्वत है, सड़न-गलन-विध्वंसक है । मल, मूत्र, श्लेष्म, मेल, वात, कफ, पित्त, शुक्र और रुधीर से उत्पन्न हुए हैं । दुर्गन्धयुक्त श्वासोच्छ्वास और मल-मूत्र से परिपूर्ण है । वात, पित्त, कफ के द्वार हैं । पहले या बाद में अवश्य त्याज्य हैं । देवलोक में देव अपनी एवं अन्य देवीओं को स्वाधीन करके या देवीरूप विकुर्वित करके कामभोग करते हैं । यदि मेरे सुचरित तप-नियम-ब्रह्मचर्य का कोई फल हो तो इत्यादि पहले निदान समान जानना।

हे आयुष्मान् श्रमणों ! निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी इस निदानशल्य की आलोचना किए बिना काल करे यावत्

देवलोक में भी उत्पन्न होवे यावत् वहाँ से च्यव कर पुरुष भी होवे, उसे केवलिप्राप्त धर्म सूनने को भी मिले, किन्तु उसे श्रद्धा से प्रतीति नहीं होती यावत् वह दक्षिणदिशावर्ती नरकमें नारकी होता है । भविष्य में दुर्लभबोधि होता है।

हे आयुष्मान् श्रमणों ! यही है उस निदान शल्य का फल-कि उनको धर्म के प्रति श्रद्धा-प्रीति या रुचि नहीं होती । (यह है पाँचवा 'निदान')

सूत्र - १०८

हे आयुष्मान् श्रमणों ! मैंने धर्म का निरूपण किया है । (शेष सर्व कथन प्रथम 'निदान' के समान जानना।) देवलोक में जहाँ अन्य देव-देवी के साथ कामभोग सेवन नहीं करते, किन्तु अपनी देवी के साथ या विकुर्वित देव या देवी के साथ कामभोग सेवन करते हैं । यदि मेरे सुचरित तप आदि का फल हो तो (इत्यादि प्रथम निदानवत्) ऐसा व्यक्ति केवलि प्ररूपित धर्म में श्रद्धा-प्रीति-रुचि नहीं करते, क्योंकि वह अन्य दर्शन में रुचिवान् होता है । वह तापस, तांत्रिक, अल्पसंयत या हिंसा से अविरत होते हैं । मिश्रभाषा बोलते हैं–जैसे कि मुझे मत मारो, दूसरे को मारो इत्यादि । वह स्त्री सम्बन्धी कामभोगों में मूर्छित, ग्रथित, गृद्ध, आसक्त यावत् मरकर किसी असुर लोक में किल्बिषिक देव होता है । वहाँ से च्यव कर भेड़-बकरों की प्रकार गुँगा या बहरा होता है ।

हे आयुष्मान् श्रमणों ! यह इसी निदान का फल है कि वे केवलि प्ररूपित धर्म में श्रद्धा-प्रीति नहीं रखते । (यह हुआ छठ्ठा 'निदान')

सूत्र - १०९

हे आयुष्मान् श्रमणों ! मैंने धर्म का निरूपण किया है यावत् जो स्वयं विकुर्वित देवलोक में कामभोग का सेवन करते हैं । (यहाँ तक सब कथन पूर्व सूत्र-१०८ के अनुसार जानना) हे आयुष्मान् श्रमणों ! कोई निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी ऐसा निदान करके बिना आलोचना-प्रतिक्रमण किए यदि काल करे यावत् देवलोक में उत्पन्न होकर अन्य देव-देवी के साथ कामभोग सेवन न करके स्वयं विकुर्वित देव-देवी के साथ ही भोग करे । वहाँ से च्यव कर किसी अच्छे कुल में उत्पन्न भी हो जाए, तब उसे केवलि प्ररूपित धर्म में श्रद्धा-प्रीति-रूचि तो होती है लेकिन वह शीलव्रत –गुणव्रत-प्रत्याख्यान-पौषधोपवास नहीं करते । वह दर्शनश्रावक हो सकता है । जीव-अजीव के स्वरूप का यथार्थ ज्ञाता भी होता है यावत् अस्थिमज्जावत् धर्मानुरागी भी होता है ।

हे आयुष्मान् श्रमण ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही जीवन में इष्ट है, यही परमार्थ है, शेष सर्व निरर्थक है, इस प्रकार अनेक वर्षों तक आगार धर्म की आराधना भी करे, मरकर किसी देवलोक में उत्पन्न भी होवे । लेकिन शीलव्रत आदि धारण न करे यह है इस निदान का फल । (यह हुआ सातवां 'निदान')

सूत्र - ११०

हे आयुष्मान् श्रमणों ! मैंने धर्म का प्रतिपादन किया है (शेष कथन प्रथम निदान समान जानना) मानुषिक विषयभोग अध्रुव यावत् त्याज्य हैं । दिव्यकाम भोग भी अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत एवं अस्थिर हैं । जन्म-मरण बढ़ानेवाले हैं । पहले या पीछे अवश्य त्याज्य हैं । यदि मेरे तप-नियम-ब्रह्मचर्य का कोई फल हो तो मैं विशुद्ध जाति-कुल में उत्पन्न होकर उग्र या भोगवंशी कुलिन पुरुष श्रमणोपासक बनुं, जीवाजीव स्वरूप को जानुं यावत् प्रासुक अशन, पान, खादिम, स्वादिम प्रतिलाभित करके विचरण करूँ ।

हे आयुष्मान् श्रमणों ! यदि कोई निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी इस प्रकार से निदान करे, आलोचना-प्रतिक्रमण किए बिना काल करे, तो यावत् देवलोक में देव होकर-ऋद्धिमंत श्रावक भी हो जाए, केवलिप्रज्ञप्त धर्म का भी श्रवण करे, शीलव्रत-पौषध आदि भी ग्रहण करे, लेकिन वह मुंड़ित होकर प्रव्रजित नहीं हो सकता । श्रमणोपासक होकर यावत् प्रासुक एषणीय अशनादि प्रतिलाभित करके बरसों तक रहता है । अनशन भी कर सकता है, आलोचना प्रतिक्रमण करके समाधि भी प्राप्त करे यावत् देवलोक में भी जाए ।

हे आयुष्मान् श्रमणों ! उस निदान का यह पापरूप विपाक है कि वह अनगार प्रव्रज्या ग्रहण नहीं कर सकता । (यह है आठवां 'निदान')

सूत्र - १११

हे आयुष्मान् श्रमणों ! मैंने धर्म का निरूपण किया है यावत् (पहले निदान के समान सब कथन करना) मानुषिक, दिव्य कामभोग, भव परंपरा बढ़ानेवाले हैं । यदि मेरे सुचरित तप-नियम-ब्रह्मचर्य का कोई फल विशेष हो तो मैं भी भविष्य में अन्त, प्रान्त, तुच्छ, दरिद्र, कृपण या भिक्षुकुल में पुरुष बनुं, जिस से प्रव्रजित होने के लिए गृहस्थावास छोड़ना सरल हो जाए ।

हे आयुष्मान् श्रमणों ! यदि कोई निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी ऐसा निदान करे, उसकी आलोचना-प्रतिक्रमण किए बिना काल करे (शेष पूर्ववत् यावत्) वह अनगार प्रव्रज्या तो ले सकता है, लेकिन उसी भव में सिद्ध होकर सर्व दुःखों का अन्त नहीं कर सकता । वह अनगार इर्या समिति, यावत् ब्रह्मचर्य का पालन भी करे, अनेक बरसों तक श्रमण पर्याय भी पाले, अनशन भी करे, यावत् देवलोक में देव भी होवे ।

हे आयुष्मान् श्रमणों ! उस निदानशल्य का यह फल है कि उस भव में वह सिद्ध बुद्ध होकर सब दुःखों का अन्त नहीं कर सकता । (यह है नववां 'निदान')

सूत्र - ११२

हे आयुष्मान् श्रमणों ! मैंने धर्म का प्रतिपादन किया है । यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है यावत् तप संयम की साधना करते हुए, वह निर्ग्रन्थ सर्व काम, राग, संग, स्नेह से विरक्त हो जाए, सर्व चारित्र परिवृद्ध हो, तब अनुत्तर ज्ञान, अनुत्तर दर्शन यावत् परिनिर्वाण मार्ग में आत्मा को भावित करके अनंत, अनुत्तर आवरण रहित, सम्पूर्ण प्रतिपूर्ण केवलज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न होता है । उस वक्त वो अरहंत, भगवंत, जिन, केवलि, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी होता है, देव मानव की पर्षदा में धर्म देशना के दाता, यावत् कईं साल केवलि पर्याय पालन करके, आयु की अंतिम पल जानकर भक्त प्रत्याख्यान करता है । कईं दिन तक आहार त्याग करके अनशन करता है । अन्तिम श्वासोच्छ् वास के समय सिद्ध होकर यावत् सर्व दुःख का अन्त करता है ।हे आयुष्मान् श्रमण ! वो निदान रहित कल्याण कारक साधनामय जीवन का यह फल है कि वो उसी भव में सिद्ध होकर यावत् सर्व दुःख का अन्त करते हैं ।

सूत्र - ११३

उस वक्त कईं निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी ने श्रमण भगवान महावीर के पास पूर्वोक्त निदान का वर्णन सुनकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन नमस्कार किया । पूर्वकृत् निदान शल्य की आलोचना प्रतिक्रमण करके यावत् उचित प्रायश्चित्त स्वरूप तप अपनाया ।

सूत्र - ११४

उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर ने राजगृह नगर के बाहर गुणशील चैत्य में एकत्रित देव-मानव आदि पर्षदा के बीच कईं श्रमण-श्रमणी श्रावक-श्राविका को इस प्रकार आख्यान, प्रज्ञापन और प्ररूपण किया ।हे आर्य ! ''आयति स्थान'' नाम के अध्ययन का अर्थ-हेतु-व्याकरण युक्त और सूत्रार्थ और स्पष्टीकरण युक्त सूत्रार्थ का भगवंतने बार-बार उपदेश किया । उस प्रकार मैं (तुम्हें) कहता हूँ ।

दशा-१०-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

३७ दशाश्रुतस्कन्ध-छेदसूत्र-४ का
मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

પૂજ્યપાદ્ શ્રી આનંદ–ક્ષમા–લલિત–સુશીલ–સુધર્મસાગર ગુરૂભ્યો નમઃ

३७

दशाश्रुतस्कन्ध

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

[अनुवादक एवं संपादक]

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

વેબ સાઇટ:– (1) www.jainelibrary.org (2) deepratnasagar.in

ઇમેલ એડ્રેસ:- jainmunideepratnasagar@gmail.com મોબાઇલ 09825967397